सम्मेलन पत्रिका

(शोध–त्रैमासिक)

भाग	:	१११, संख्या–१
माघ-चैत्र	:	संवत् २०८२–८३
जनवरी-मार्च	:	सन् २०२६

प्रधान सम्पादक

कुन्तक मिश्र

सम्पादक

रामकिशोर शर्मा

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, प्रयागराज-३

ISSN : 2278-1773
पीयर रिव्यूड शोध पत्रिका

प्रकाशक
कुन्तक मिश्र
प्रधानमंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, प्रयागराज-३
दूरभाष (कार्यालय)- ०५३२-२५६४१९३, मो० : ९६९६३५६९८७

- सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों तथा प्रस्तुत किये गये तथ्यों से प्रकाशक व सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं। इसका पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक का होगा।
- इस पत्रिका में विशेषज्ञों द्वारा समीक्षित एवं अभिनिर्णित लेख प्रकाशित किये जाते हैं।

एक प्रति का मूल्य : २१० रु०
वार्षिक मूल्य : ८०० रु०

विदेश के लिए वार्षिक मूल्य : ४० डालर (डाक व्यय अतिरिक्त)

वार्षिक सदस्य बनने के लिए **८००.०० रु०** का ड्राफ्ट या पोस्टल-आर्डर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १२ सम्मेलन मार्ग, प्रयागराज-३ के नाम भेजें। कृपया चेक या मनीआर्डर न भेजें।

मुद्रक :
सम्मेलन मुद्रणालय
१२, सम्मेलन मार्ग, प्रयागराज-३

विषय-सूची

सम्पादकीय

क्र.सं.	आलेख	लेखक	पृष्ठ
	साहित्य आलेख		
१.	**आज की कविता का प्रबन्धशास्त्र**	–प्रो० सूर्यप्रसाद दीक्षित	७–१४
२.	**महेन्द्र मिश्र के लोकगीतों में नारी-जीवन**	–डॉ० अजय कुमार	१५–२४
३.	**उत्तर छायावादी कविता में गूँजता प्रखर राष्ट्रीय स्वर**	–डॉ० अरविन्द कृष्ण उपाध्याय	२५–३२
४.	**हाशिये पर कृषक : 'फांस' और 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास के विशेष सन्दर्भ में**	–वन्दना पटेल	३३–३९
५.	**प्रमुख ऐतिहासिक हिन्दी उपन्यासों में स्त्री : चिन्तन एवं चित्रण**	–शुभम कुमार मौर्य	४०–४७
६.	**मीराबाई के काव्य में लोक-चेतना**	–डॉ० सोनम शुक्ला	४८–५२
७.	**मन्नू भण्डारी की कहानियों में नारी-जीवन का संघर्ष**	–डॉ० अनीता वर्मा	५३–५७
८.	**समकालीन हिन्दी कविता में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ**	–अंजली कुमारी	५८–६३
९.	**मित्रों मरजानी' के स्त्री पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण**	–अंकित कुमार मौर्य	६४–७२
१०.	**रामचरितमानस में स्त्री पीड़ा एवं संघर्ष**	–डॉ० धर्मेन्द्र कुमार	७३–८१
११.	**शमशेर बहादुर सिंह : प्रगतिशीलता और रोमानियत का अद्वैत**	–डॉ० गोपाल सिंह	८२–८६
१२.	**अनुपमेय शंकर में आदि शंकराचार्य : एक सांस्कृतिक विमर्श**	–दिनेश कुमार	८७–९३

१३. लोकधारा-३ काव्यसंग्रह में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप	–श्री मनोजचन्द्र तिवारी	९४–१०१
१४. शेखर जोशी की कहानियाँ और सामाजिक यथार्थ	–डॉ० लोङ्जम रोमी देवी	१०२–१०९
१५. हिन्दी कहानी में दिव्यांगजन बोध : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	–अनिल यादव	११०–११५
१६. रामधारी सिंह दिवाकर की कहानियों में स्त्री के विविध स्वर	–शिल्पी कुमारी	११६–१२३
१७. २१वीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में चित्रित जीवन पर राजनीतिक प्रभाव	–डॉ० मनीष कुमार शुक्ला	१२४–१२९
१८. राष्ट्र की आत्मा का कवि	–विमल कुमार	१३०–१३६
१९. नरेन्द्र कोहली के आरम्भिक पक्ष के अनुभवों को उभारती आत्मस्वीकृति आत्मकथा	–प्रीति शर्मा	१३७–१४३

सम्पादकीय

'सम्मेलन पत्रिका' पं० मदन मोहन मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के द्वारा महात्मा गाँधी की सहमति से १९१० में स्थापित संस्था हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित शोध-पत्रिका है। इसका प्रकाशन १९१३ से आरम्भ हुआ, तब से अनवरत यह पत्रिका प्रकाशित हो रही है। लगभग १०८ (एक सौ आठ) वर्षों में इसमें अनेक ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्त्व के शोध-पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। मालवीय जी विशेषांक, गाँधी-टण्डन विशेषांक, लोक-संस्कृति विशेषांक के अलावा जन्मशती के अवसर पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नन्द दुलारे वाजपेयी, मैथिलीशरण गुप्त,, माखनलाल चतुर्वेदी, राहुल सांकृत्यायन, भारतेन्दु शुक्ल, नन्द दुलारे वाजपेयी, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, राहुल सांकृत्यायन, भारतेन्दु आदि लेखकों पर उच्चस्तरीय सामग्री से युक्त विशेषांक प्रकाशित हुए हैं। पत्रिका की गरिमामयी परम्परा तथा स्तर को बनाये रखने के लिए सम्पादक की अपेक्षा लेखकों की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण है। आलेख यथासम्भव नवीन विषयों या ज्ञात तथ्यों की पुनर्व्याख्या से सम्बन्धित हों। एक या दो पुस्तकों से उतारकर आलेख न भेजें। शोध आलेख में उद्धृत कविताओं, मतों तथा अन्य उद्धरणों के लेखक का नाम, पुस्तक का नाम, पृष्ठ संख्या, संस्करण आदि का उल्लेख अवश्य करें। आप लोग इस उन्नत परम्परा के संरक्षण में अपना अमूल्य योगदान करेंगे।

सम्मेलन पत्रिका की नियम एवं शर्तें

(१) सम्मेलन पत्रिका के समस्त आलेख शोधार्थियों एवं प्राध्यापकों के लिए उपयोगी होने चाहिए।

(२) शोधार्थी अपने मौलिक आलेख को अपने शोध निर्देशकों से अग्रसारित कराकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यालय में प्रेषित कर सकते हैं।

(३) सम्मेलन की चयन समिति के पास सर्वाधिकार है कि वह आपके आलेख प्रकाशन को स्वीकृत/अस्वीकृत कर सकती है।

(४) शोधार्थी/प्राध्यापक अपने आलेख की हार्डकॉपी सम्मेलन कार्यालय में भेजें और अपने शोध आलेख (माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस वर्ड २००७ सॉफ्टवेयर में कृतिदेव ०२१ में १६प्वाइंट में) टंकित कराकर तथा एक बार गम्भीरता से उसे पढ़कर, त्रुटियों को सुधार करके प्रकाशन हेतु प्रेषित करें, शोध आलेख की सॉफ्ट कॉपी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ईमेल hs.sammelan.alld@gmial.com पर भेजें।

(५) शोध आलेख ८ पृष्ठों से अधिक न हो।

(६) शोध आलेख के साथ अपना परिचय, पता, एवं सम्पर्क-सूत्र इत्यादि का उल्लेख होना चाहिए।

(७) आप अपने शोध आलेख साहित्य-विभाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन १२, सम्मेलन मार्ग, प्रयागराज, उ०प्र०-२११००३ पर प्रेषित कर सकते हैं।

-रामकिशोर शर्मा

साहित्य आलेख

आज की कविता का प्रबन्धशास्त्र

–प्रो० सूर्यप्रसाद दीक्षित

समकालीन काव्य को पढ़कर वर्तमान काल के यथार्थ का सम्यक् बोध हो सकता है, क्योंकि इसमें जीते जागते, संघर्ष करते, तड़पते-गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते हुए वास्तविक जीवित आदमी के परिदृश्य हैं। इसमें असंतोष विद्राह का विस्फोट है। वास्तव में समकालीन कविता, मुख्यता 'विचार परक कविता' है। यह 'सूत्र कविता' या कैप्सूल कविता गागर में सागर' की कहावत को चरितार्थ करती है। कैप्सूल कविताएँ अपने राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं अन्तर-राष्ट्रीय परिवेश के प्रति कवियों की सतत जागरूक, बौद्धिक एवं रागात्मक प्रतिक्रिया का प्रतिफलन है। प्रभावों की इस दुनिया में सत्य और ईमान का दामन पकड़कर चलने वाले व्यक्ति की कठिनाइयों की अनुभूति की पीड़ा भी कतिपय लघु कविताओं में व्यक्त हुई है। 'हास्य व्यंग्य प्रधान कविता' में समाज, शिक्षा, शासन, राजनीति आदि पर व्यंग्य-प्रहार किये गये हैं। यों, यह कविता अब स्वतः समाप्त हो गयी है।

समकालीन कविता राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरुद्ध सशक्त बौद्धिक विद्रोह व्यक्त करती है। लोकतन्त्र एवं स्वतन्त्रता की निरर्थकता को लेकर यह क्षुब्ध है। अपने परिवेश में व्याप्त अराजकता एवं शोषण के विरुद्ध वह क्रान्ति लाना चाहती है। उसकी दृष्टि में भ्रष्ट नेता सत्ता को हथियाने के नये-नये हथकण्डे अपनाते जा रहे हैं। राजनीति का अपराधीकरण हो गया है। समाजवाद की स्थापना का स्वप्न खण्डित हो गया है। राजनीति की आतंकवादी कूटनीति ने ही समाज के जंगल में परिवर्तित हो गया है। सामान्य आदमी की दयनीय स्थिति ने इस कवि के ध्यान को आकृष्ट किया है। इसके लिए वर्ग-संघर्ष सामूहिक क्रान्ति करनी होगी। पश्चिम के अन्धानुकरण से सामाजिक व्यवस्था में जो आधुनिकता आई है, ये कवि उसका समर्थन नहीं करते। नैतिक मूल्यों में आई गिरावट पर वे चिन्तित हैं। उच्छृंखल यौवन क्रान्ति की भी उसने निन्दा की है। मूल्यहीनता के विरुद्द लड़ते हुए उसने पुराने मूल्यों में आस्था प्रकट की है। पारिवारिक तथा सामाजिक यथार्थ के प्रति वह पूर्ण सजग है और दैनिक जीवन के यथार्थ के प्रति भी वह पूर्ण सचेत है। मदिरापान, रिश्वतखोरी, चाटुकारिता जैसी दुर्बलताओं पर उसने तीक्ष्ण प्रहार किये है। सुविधाजीवी मध्यवर्ग की समझौतावादी मनोवृत्ति पर भी उसने कुठाराघात किया है। सर्वहारा पीड़ित वर्ग को संगठित होकर क्रान्ति करने के लिए

वह प्रेरित करता है। संघर्ष और स्वाभिमान का जीवन जीने की ही प्रेरणा उसने दी है। यथास्थितिवाद एवं अवसरवादिता की उसने घोर निन्दा की है। प्रदर्शन उसे अच्छा नहीं लगता। वह मानता है कि बौद्धिकता, वैज्ञानिकता के कारण आत्मीयता और स्निग्धता का लोप हुआ है। समकालीन परिवेश में व्याप्त तनावों को उसने अभिव्यक्ति दी। अपनी संस्कृति, कला और सभ्यता के प्रति एक सजग अनुराग इस काव्य में दृष्टिगोचर होता है। वह मनुष्य की अस्मिता की रक्षा करना चाहता है। जीवन और जगत् से उसे गहरा लगाव है। वह समष्टिवादी है।

समकालीन कविता का कवि अपने चतुर्दिक् परिवेश में व्याप्त आतंक के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है। आतंक चाहे आततायी सत्ताधारी का हो या शोषणकर्ता पूंजीपति का या फिर असामाजिक उग्रवादी तत्त्वों का। सत्ता निर्बल सबल सबको भयावह बना देती है। जनतन्त्र अब भीड़तन्त्र बन गया है। इस आतंक का शिकार है सामान्य जन। अहिंसा की आँड़ में हिंसा पनप रही है। आततायी शासन अपना दमन चक्र चला रहा है। इस कवि ने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रमजीवी वर्ग की दयनीय स्थिति का चित्रण भी अपना विरोध या आक्रोश प्रकट करने के लिए किया है। काले धन से विलासिता में डूबे नर-पिशाचों को उसने लताड़ा है। उसकी जनवादी चेतना में दृढ़ निष्ठा है।

इस कवि को यथार्थ का गहन बोध है। वह जानता है कि सर्वसामान्य आदमी का दैनिक जीवन आदि से अन्त तक उलझनों से घिरा रहता है। यह कवि महानगरीय जीवन से संत्रस्त है। यहाँ का जीवन संत्रासों, कुण्ठाओं, मानसिक यातनाओं से भरा जीवन है। ग्रामीण अंचल की स्निग्धता उसे आकर्षित करती है।

समकालीन कवि मनुष्यता को ही सर्वोपरि महत्त्व देता है। वह मानता है कि मनुष्य को सहृदय सहानुभूतिपूर्ण, संवेदनशील होना चाहिए। स्वाभिमानी, ईमानदार, कर्त्तव्यपरायण, सरल, मृदुभाषी और कोमल स्वभाव का व्यक्ति समाज का हित करता है। जग-जीवन की पीड़ा से द्रवित हो जाने वाला ही महान हो सकता है।

सम्बन्धों की मिठास का अहसास भी इस कवि को खूब है। पति-पत्नी का सान्निध्य जनित लगाव उसे गुदगुदाता है। इस कवि की प्रेमानुभूति भी गहन है। प्रेम में एकाकार होने वाले प्रेमी-युगल के आनन्द से वह परिचित है।

यह कवि प्रकृति-प्रेमी है। प्रकृति के शीतल अंचल के तले जो सुख मिलता है, उसे अनुभव कर रहा है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी क्षेत्र में आज कविता के कइ रूप परिलक्षित हो रहे हैं, जैसे- (१) छपी हुई कविता, (२) मंचीय कविता, (३) जनसंचार माध्यमों

द्वारा प्रसारित कविता, (४) सिने गीत या फिल्मी कविता, (५) जनपदीय विभाषाओं में रचित कविता, (६) अनूदित कविता, (७) लोकगीत, लोकगाथाएँ अर्थात् लोकमानस द्वारा रचित कविता, (८) विज्ञापनों में सन्निहित कविता (पद्यबन्ध), (९) कम्प्यूटर से सम्भावित कविता आदि।

इनमें सर्वाधिक दुर्दशा है छपी हुई कविता की। पत्र-पत्रिकाओं में इसका प्रतिशत दिनोंदिन घटता जा रहा है, इसलिए कि उसकी पाठकीयता मिटती-सिमटती जा रही है। पाठकीयता का संकट आया है, पठनीयता की कमी के कारण। इस बीच अधिकतर कवियों ने संगीतवादी छन्द को लगभग पूरी तरह छोड़ दिया। अतः वाचिकता कम हो गयी है। उन्होंने न सृजन धर्मिता को सही ढंग से आत्मसात किया और न यति, गति, लय आदि का प्रशिक्षण लिया। जनोप्रयोगिा, मौलिकता, सहृदयता, संवेदना आदि को भी प्रायः वरीयता नहीं दी गयी। ज्यादातर कवि अपनी शर्तों पर लिखते रहे। आज के अधिकतर कवि आत्मनेपदी कविताएँ करते हैं। वे अधिकतर आत्मसंलाप करते हैं और प्रायः ''मैं-मैं'' की मिमियाहट व्यक्त करते रहते हैं। कुल मिलाकर व्यक्तिगत कुण्ठाएँ, विक्षोभ, नकली नूरा कुश्ती वाला आक्रोश और बदजायका जुगुप्सा बोध। पाठक इसकी अतिशय आवृत्ति से ऊब गया है। उसे इन रचनाकारों की मसीहाई आवाज अब छू नहीं पाती। ये रचनाकार एक ओर व्यवस्था-विरोध का छद्म आचरण करते हैं, बड़बोलापन प्रकट करते हैं और दूसरी ओर सत्ता की परिक्रमा करते रहते हैं। वे अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनते हुए स्वयं को कविर्मनीषी युग द्रष्टा, स्रष्टा यानी महामति (त्रिकालज्ञ) या बुद्धिजीवी मान लेते हैं। आज भी वे कवि कर्म को लोकोत्तर क्रिया समझ बैठते हैं और मन ही मन ऐठ जाते हैं। इस आत्म मुग्धता के कारण वे सहज जनकवि नहीं हो पाए हैं। इन्होंने पश्चिम के कुछ वाद पढ़ लिए और अपने को मध्यवर्ग से अलग कर लिया। प्रयोगवाद के दौर में अज्ञेय ने कभी दम्भवश यह घोषणा कर दी थी कि सम्प्रेषण हमारी समस्या नहीं है, याानी जिसकी गर्ज हो वह पढ़े। कुछ दिनों तक कविता से यह पुराना नाता-रिश्ता चलता रहा। भक्ति काव्य से लेकर १९६० तक पाठक वर्ग कविता से सुख-दुखात्मक संवाद करता रहा। उसी बीच छायावादी कविता जमीन छोड़कर सप्ताकश की ओर चली गयी। प्रगतिवादी कविता राजनीतिक नारे लगाने में सक्रिय हो गयी और प्रयोगवादी कविता कला-करतब में खो गयी तो तुक, ताल विहीन गद्य में लिखी गयी ये वक्तव्य जैसी कविताएँ न पाठकों का मनोरंजन कर पायीं और न जन शिक्षण एवं प्रबोधन दे पायीं। इस बीच संगीत का सहारा लेकर और रोजमर्रा की शिक्षण एवं प्रबोधन दे पायीं। इस बीच संगीत का सहरा लेकर रोजमर्रा की सहानुभूति से जुड़कर फिल्मी कविता सब पर छा गयी। इसी समय मंचीय कविता ने अपना एक नया तेवर दिखाया। जनता प्रशासनिक भ्रष्टाचार नेतागिरि से क्षुब्ध हो रही थी, अतः मंच के कवियों ने

बड़ी नाटकीयता के साथ भ्रष्टाचार से जुड़ी दैनन्दिन घटनाओं पर हास्य-व्यंग्य पूर्ण रचनाएँ (टिप्पणियाँ) पढ़नी शुरू कर दीं। फलतः वे लोकप्रिय हो गये और कलावादी कवि मंचों से उखड़ गये। आज ये हँसोड़िये अथवा दर्देदिल के चितेरे, ये गजलगो, साथ ही नकली आक्रोश-विद्रोह से ओत-प्रोत ये वीर रस वाले मंच तोड़ू कवि जन-साधारण के कण्ठहार हो गये हैं। इस बीच बुद्धिवादी कवि समसामयिक विषयों पर लिखना हेठी समझते रहे, जबकि ये मंचीय गला फाड़ू कवि पूरी तरह अपने लक्ष्यभूत सामान्य श्रोता समाज के मनोविज्ञान से सम्बद्ध रहे। उनका उद्देश्य चित्तवृत्ति का उन्नयन करना नहीं, 'बल्कि तुष्टीकरण करना है, इसलिए कि मंच उनका व्यवसाय है, न कि कोई मिशन। सम्प्रति कई फिल्मी और मंचीय कवि लोकप्रियता के शिखर पर है। वे अपनी दस पाँच पंक्तियों का मानदेय लाखों में लेते हैं और कई मंचीय सिने कवयित्रियाँ भी। इधर 'लाफ्टर चैनेल' इन्हें उखाड़ते हुए दिख रहे हैं।

सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह कि छपी कविता का कोई पुरसा हाल नहीं रह गया है। पत्र-पत्रिकाओं में वे रिक्त-स्थान की पूर्ति करने के लिए 'फीडर' रूप में छापी जाती हैं। उनमें भी ज्यादातर रोमैंटिक-रसीली रचनाएँ होती हैं। अपने खर्चे से उन्हें छापना प्रकाशकों-सम्पादकों ने लगभग बन्द कर दिया है। पाठ्यक्रमों में भी इन कवियों का प्रवेश लगभग प्रतिबन्धित है। दूसरी ओर चिन्तन-सृजन प्रकाशन इस बीच कम्प्यूटर प्रिंटिंग के कारण काफी आसान हो गया है। इसलिए प्रायः हर कवि दस-बीच हजार खर्च करके अब स्वयं अपने काव्य संकलन का प्रकाशन करने, उसका लोकार्पण कराने और उस पर प्रायोजित समीक्षाओं को छापने के लिए व्यग्र-उदग्र दिखाई देता है। यही कारण है कि इन दिनों काव्य-संकलनों की बाढ़ आ गयी है। यह झाड़-झंखाड़ इतना सघन हो गया है कि अच्छी कविताएँ उसी में दबती जा रही हैं।

कविता का जनाधार चूँकि इस बीच कम हो गया है, इसलिए बहुसंख्यक कवि समुदाय राज्याश्रय की ओर मुड़ गया है। साहित्यिक संस्थाओं के भीतर पुरस्कारों की वीभत्स-भयंकर रणनीति चल रही है। सरकारी थोक बिक्री के क्षेत्र में भीषण जंगी प्रतिस्पर्धा मची हुई है। किताबों के शीर्षक, कागज, छपाई आदि प्रायः नयनाभिराम। बस कमी है सहृदय समाज की। मंचों पर से ये कवि हूट कर दिये जाते हैं। केवल छोटी निजी गोष्ठियों में ही इनकी खपत है। ये ज्यादातर जनवादी चेतना से प्रेरित हैं, किन्तु जन तक पहुँच नहीं पाते हैं। इन्होंने खास तरह के मुहावरे गढ़ लिये हैं। गजल में वे शब्द-क्रीड़ा करने लगे हैं। नवगीत में लफ्फाजी दिखाते हैं और गद्यात्मक कविता में वे वक्तव्य देते हैं। ये तीनों धाराएँ किसी एक विषय को लेकर जमकर पाठक का रस-परिपाक नहीं कर पातीं। इनका मुक्ताषंग केवल उन्हें ऊपर से छूकर रह जाता है, इसलिए इनकी लफ्फाजी का स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता है।

जनपदीय विभाषाओं में रचित कविताएँ तृणमूल से अपेक्षाकृत ज्यादा जुड़ी हुई हैं, लेकिन इन राजस्थानी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बुन्देली, कवियों के पास भौतिक संसाधनों का बड़ा अभाव है। न पत्र-पत्रिकाएँ हैं, न प्रकाशक हैं, न पुरस्कार प्रदात्री संस्थाएँ हैं, न थोक बिक्री। न पाठ्यक्रम में प्रवेश है और न शोध क्षेत्र में प्रतिष्ठा है। स्थानीय मंच ही इनका एकमात्र शरणस्थल है।

लोक वांग्मय में रचित कविता कहीं-कहीं व्यावसायिक कैसेटों में ढ़ल गयी है, पर ज्यादातर लोक कण्ठ में विद्यमान हैं और क्रमशः छीजती जा रही है। यह बाजारू वृत्ति भोजपुरी (महुआ चैनेल) एवं राजस्थानी जैसी विभाषा को क्षत-विक्षत किये डाल रही है।

इधर विज्ञापनों में कविता (पद्य) को विशेष प्रश्रय दिया गया है। एक मेगा स्टार के द्वारा प्रस्तुत की गयी ये पंक्तियाँ- 'दिल की पतंग है सपनों का शेर, आसमान भी कम है, यह दिल माँगे मोर' यह कविता जैसी दिखती है। इसी प्रकार- 'मारा सिक्स, हो गया फिक्स, अंकल चिप्स, जब चाहो हो जाय, कोको कोला एन्जाय, देसी मिर्च का तड़का, अंग-अंग फड़का, आयोडेक्स मलिये, काम पर चलिये, स्वाद लाजवाब, सुगन्ध, वाह जनाब, त्योहारों की उमंग, यूपिका के संग' आदि। इन सबमें तुकान्तता तो है ही, कुछ-कुछ काव्योचित लक्षणा-व्यंजना भी है। इससे निष्कर्ष यह निकल रहा है कि जिस कविता को हमारे समकालीन कवियों ने अपनी वैचारिक हठधमिता के कारण निष्प्रभाव बना डाला था, उसे विज्ञापनदाताओं और फिल्मी गीतकारों ने बाजार यानी ग्राहकों से जोड़कर पुनर्जीवित कर दिया है, भले ही अपने निहित स्वार्थवश।

सम्प्रति कविता छोटी घरेलू गोष्ठियों में सीमित हो गयी है। लिखास-भँड़ास-छपास काफी बढ़ गयी है, इसलिए रचनाकारों ने अपने अलग-अलग मंच बना लिये हैं, जहाँ वे परस्पर गायक तथा श्रोता की भूमिका निभाते हैं और इसी बहाने वे अपनी सिसृक्षा की क्षति पूर्ति कर ले जाते हैं।

इस बीच एक आश्चर्यजनक प्रयोग कम्प्यूटर ने किया है, अंग्रेजी भाषा में सॉनेट की रचना करके। सम्भव है, कभी हिन्दी घनाक्षरी, दोहा, गीत और गज की कम्प्यूटरी रचना भी की जा सके। शायद कभी कविता का डी०एन०ए० क्लोन, हारमोन या जीन्स भी खोज लिया जाये, बशर्ते बाजार साथ दे।

इधर विश्व-भाषाओं के पारस्परिक अनुवाद का नया चलन शुरू हुआ है। मिले-जुले कवि-सम्मेलन काफी होने लगे हैं।

कविता को समकालीन व्यवस्था से जोड़ने के लिए यह आवश्यक हो गया है कि-

(१) उसे पुनः श्रुति-काव्य बनाया जाय, वाचन-कला का रिहर्सल किया-कराया जाये। कविता को पहले आत्मसात किया जाए और डायरी देखकर कविता न पढ़ी जाए।

(२) काव्य-रचना का औपचारिक-अनौपचारिक प्रशिक्षण सुलभ कराया जाय।

(३) कविता के मूल दो तत्त्व हैं- एक क्रोध, दूसरे करुणा। यदि वतमान व्यवस्था के प्रति हम श्रोताओं में क्रोध एवं करुणा जाग्रत कर सकें तो कविता स्वतः लोक ग्राह्य हो जायेगी। बशर्ते मीडियाकर्मियों की तरह वह भी 'न्यूसेंसवैल्यू' बन जाए।

(४) कविता का लक्ष्यभूत श्रोता गण खोजा जाए और एक निश्चित अनुपात में उसका मनःप्रसादन किया जाए, साथ ही उच्चीकरण-उदात्तीकरण भी।

(५) पारम्परिक कविता में कला-कौतुक, जैसे-समस्यापूर्ति, आशु कविता, गूढ़ काव्य आदि का पुनः प्रचलन किया जाए। 'कविता क्विज' बनाकर उसे जनप्रिय बनाया जा सकता है।

(६) कविता को संगत और छन्दोबद्धता से जोड़ा जाए। तुकान्तता नहीं तो स्वर-लय का विधान तो होना ही चाहिए।

(७) कविता का गहरा सम्बन्ध है राग चेतना से, इसलिए बौद्धिकता-रागात्मकता में समन्वय स्थापित किया जाए।

(८) आज की कविता का मुख्य मुद्दा है सम्प्रेषण। इसके लिए अपेक्षित है- संवेदना, नवोद्भावना, उक्ति वैचित्र्य, भावावेग, नाटकीयता, चित्रण-वर्णन-कला, सपाटबयानी, किस्सागोई, साफगोई, शब्द-सौष्ठव, भाषा संस्कार आदि। सही सम्प्रेषण के लिए शास्त्रीय विचार बिन्दु भी चाहिए और लोक बिम्ब भी। दोनों से युक्त होकर कविता सूक्ति में ढल जाएगी, यानी मन में बस जाएगी।

आज की कविता केवल वाग् विलास बनकर इस उपभोक्तावादी समाज से बहुत दिनों तक नहीं चल सकेगी। इसे उपयोगी और प्रासंगिक बनाना होगा। कवियों को इसे समकालीन जीवन से जोड़ना होगा। भूमण्डलीकरण, निजीकरण, उदारीकरण के इस दौर में जो लाभ-लोभ छाया हुआ है, पूरी व्यवस्था में जो भ्रष्टाचार व्याप्त है, जो आतंकवाद विद्यामान है, राष्ट्रीय विघटन का जो क्रम चल रहा है और दूसरी ओर ज्ञान-विज्ञान तथा तकनीक का जो विकास हो रहा है, इन सभी विषयों को हमें अपना उपजीव्य बनाना होगा। जगह-जगह पाठक शिविर लगाने होंगे। शब्दों को बुलेट और कविता को शस्त्र एवं शास्त्र दोनों का रूप देना होगा और सर्वाधिक आवश्यक यह है कि शब्द और कर्म में सामंजस्य बिठाना होगा।

कविता स्वयं में शहादत है और इबादत का स्वर है। जो उसे स्वान्तः सुखाय मानते हैं,

वे डायरी में लिखने के अधिकारी हैं, कविता के प्रकाशन के लिए अधिकृत नहीं हैं। कविता हर युग के प्रश्नों से टकराती हुई जन-मानस में भावोद्रेक पैदा करती रही है। अब तक काव्य से प्राप्त मनोरंजन और प्रबोधन के दूसरे विकल्प नहीं थे। सूचना प्रौद्योगिकी और संचार माध यमों के कारण उसका एकाधिपत्य खण्डित हो गया है। ऐसी स्थिति में जन-संवाद के उद्देश्य से कविता की नयी नीति-रीति बनानी होगी, ताकि आज की कविता आज के सवालो से जुड़ सकें और एक आवश्यक वस्तु बन सके।

समकालीन काव्य के समक्ष अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं। इनमें मुख्य हैं-

(१) **परम्परा और आधुनिकता का द्वन्द्व**- भारतीय संस्कृति हजारों-हजारों वर्षों में विकसित हुई है। भारतीयों को उस पर गर्व है। यहाँ का सर्वसामान्य आदमी अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं को नजरन्दाज करके पश्चिमी जगत् द्वारा स्थापित आधुनिकता को रातों-रात आत्मसात करने के लिए तैयार नहीं है। यहाँ नवीकरण हो रहा है, पर मन्द गति से। हमारा साहित्य वैज्ञानिक बोध को पूरी तरह से नहीं अपना सका है। यही वैचारिक संघर्ष का मूल-कारण है।

(२) **शहरीकरण**- समकालीन कविता ग्रामीण और कस्बाई जीवन से निकल कर शहरों में केन्द्रित हो गई। वह बहुजन की जगह अब उच्चमध्य वर्ग के कुलीन तन्त्र से जुड़ती जा रही है, इसलिए उसका जनाधार कमजोर होता दिख रहा है।

(३) **भूमण्डलीकरण**- यह कविता वैश्विक सन्दर्भों से जुड़ रही है। यह शुभ है, किन्तु इससे कविता अपने जमीनी सरोकारों से दूर होती जा रही है। शायद इसीलिए वह उपेक्षित होती जा रही है।

(४) **स्थानीयता या क्षेत्रीयता**- हिन्दी कविता अपने आंचलिक-प्रादेशिक चरित्र से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाई है। राजनीति ने उसे दिग्भ्रमित कर रखा है। वह बोलियों के पक्ष में विघटन पर आमादा है। राजस्थानी भोजपुरी तो पार्थक्य हेतु उतारू हैं।

(५) **बाजारीकरण**- समकालीन कविता मीडिया, मंच और पुस्तक प्रकाशन की गिरफ्त में आ गई है। फिल्मी कैसेटों, सी०डी०, ब्लाग, इण्टरनेट आदि में सिमट जाना उसकी नियति हो गई है।

(६) **सरकारीकरण**- इधर राज्याश्रय ने कविकर्म को बहुत प्रभाति किया है। अधिकतर रचनाकार पुरस्कार नीति के शिकार हो गये हैं, जिससे उनका तेज क्षीण हो गया है।

आवश्यकता यह है कि हम मूलाधार से जुड़ें। उत्सव धर्मिता को छोड़कर सही सर्जनात्मकता को ग्रहण करें। कविता की जो अवमानना हो रही है, उससे बचने के लिए हम

मिल-जुलकर निम्नलिखित प्रयास करें-

(१) मंचीय कविता को अथवा मंचीयता को उपेक्षणीय न मानें, बल्कि काव्य सृजन और वाचन-प्रशिक्षण की व्यवस्था करें। अपनी बिरादरी की क्षमता-वृद्धि हेतु उर्दू कविता, जनपदीय-लोक कविता और फिल्मी कविता को अपने साथ शामिल करें।

(२) उसे पाठ्यक्रमों में स्थान दिलाते हुए शोध-सर्वेक्षण तथा सही मूल्यांकन का उपक्रम करें।

(३) अधिकाधिक प्रकाशनों, प्रदर्शनियों, पुस्तक मेलों, समारोहों, पुरस्कारों, अनुदानों यानी प्रोत्साहन, प्रचार और सही विपणन की व्यवस्था की जाए।

(४) कविता को जाति, लिंग, वर्ग, क्षेत्र से मुक्त करके देशकाल की सामयिक और शाश्वत समस्याओं, संवेदनाओं तथा विधेयात्मक समाधानों से जोड़कर उसकी उपयोगिता, पठनीयता, पाठकीयता की संवृद्धि करें। इसके लिए एक स्वतन्त्र प्रबन्धन शास्त्र की आवश्यकता है।

-पूर्व हिन्दी-विभागाध्यक्ष
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

महेन्द्र मिश्र के लोकगीतों में नारी-जीवन

–डॉ० अजय कुमार

लोक जनमानस, भोले-भाले लोगों का जनमानस है।लोकगीत अपने आसपास के परिवेश में समाहित होते हैं। वे अपनी संस्कृति को अपने प्रत्येक छन्द में कुछ इस तरह पिरोये रहते हैं, कि उनका एक-एक मोति अपनी जीवन गाथा को बाखूबी बयान करता है। सचमुच यही जीवन गाथा ही लोक की अपनी निजी थाती होती है। मानव जीवन में लोकगीतों का अपना एक अलग महत्व है। एक रसजीवन को लोकगीत बहुरस बनाते हैं। देश-दुनिया कीसंस्कृति कैसी है। वहाँ का जीवन यापन के मायने क्या है? ये हमें अन्य माध्यमों के साथ-साथ लोकगीतों के जरिए भी ज्ञात होता है। "गीत भावों की रसात्मक एकात्मानुभूति की अभिव्यक्ति है और लोकगीत प्रकृति के उद्‌गार। लोकगीत में छन्द नहीं, अलंकार नहीं, केवल रस, जिसका सम्बन्ध सीधे हृदय से है। इन गीतों में लोक हृदय का इतिहास व्याप्त है, जिसमें प्रेम का आकर्षण है, श्रद्धा है, तथा करूणा की कोमलता है। लोकगीतों में मनुष्य के हृदय का शुद्ध प्रतिबिम्ब है, इसमें आर्दश के स्थान पर यर्थाथ है और कल्पना के स्थान पर है स्वाभाविकता।''१लोकगीत जनमानस के संघर्ष से उपजते हैं। वह मनुष्य की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का सुन्दर और सहज रूप होते हैं। स्वा की अनुभूति का रंग उनमें बहुत गाढा होता है। इसलिए वे हमारे निकट अधिक होते हैं।हिन्दी साहित्य में विविध बोलियाँ है सभी बोलियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती है। उन्हीं बोलियों में एक भोजपुरी बोली भी है। भोजपुरी बोली पूरब की एक खास बोली के रूप जानी जाती है। भोजपुरी बोली अपनी मिठास के कारण पूरे भारत में विख्यात है।महेन्द्र मिश्र भोजपुरी के अमर लोक कवि हैं। उनका रचना संसार भोजपुरी बोली की अमूल्य निधि है। आज भी भोजपुरी लाकेगीतों की दुनिया में महेन्द्र मिश्र का नाम बडे आदर के साथ लिया जाता है।

महेन्द्र मिश्र का रचना काल १९१० से १९३५ ई० तक माना जाता है। महेन्द्र अपने जीवन में बिहार, उत्तर प्रदेश और बंगाल जैसे प्रान्तों में रहकर अपनी रचना यात्रा पूरी किया। वे आजादी के आन्दोलन के समय में कई बार जेल की यात्राएँ भी किये। उनकी कलम प्रत्येक जगह अविरल गति से चलती रही। वे किसान के खेत-खलिहान से लेकर राजा की चौखट तक सभी को एक भाव से देखते थे। वे मंदिर के पुजारी और कोठे की वेश्या दोनों को समानधर्मा मानते थे। उनके गीतों में समाज को लेकर एक टीस है। वह टीस विरह के रूप

में भी हो सकती और अन्य रूपों में हो सकती है। उनके गीतो में सामाजिक, पारिवारिक जीवन के विविध चित्र सामने मिल जाते है। उनके लोकगीत अपने विषय वस्तु के कारण लोक जनमानस के अत्यंत नजदीक हैं।

ऐसा ही एक लोकगीत है महेन्द्र मिश्र का जिसमें एक स्त्री अपनी ननद से अपने मन की बात उलहना के रूप में कहती है-कि ऐ ननद चलते-चलते मेरे पैरो में र्दद होने लगा है। वह कहती है कि-ए ननदी अभी प्रियतम का देश कितना दूर है। एक तो जब से गये हैं तब से ना कोई सन्देश भेजा है और ना तो किसी से कोई हाल-खबर पूछा है। ऐ ननदी अब तो डोली और कहार भेज दो क्योंकि मेरी साथ कि सभी संग-सहेलियाँ मुझे छोडकर चली गयीं हैं।मुहल्ले की सभी औरतें मुझे भी डोली में विदा करेगी। और जिस दिन मैं विदा होकर अपने ससुराल चली जाऊँगी उस दिन मेरे बाबा का दुआर सुना हो जायेगा। वह सुहागन अपनी सारी बात अपनी ननद से कह देती है। यहाँ ननद से कहने के अभिप्राय यह है कि एक स्त्री दूसरी स्त्री से अपने मन की बात खुलकर कह देती है। उसे कोई संकोच नहीं है। उसके मन में जो कल्पना या यर्थाथ चल रहा है वह सब का सब वह कह दे रही है।वहअपने प्रियतम की बात वह किससे कहे। वह अपनी ननद से कहती है-

"चलत-चलत मोरा पईया पिरइले, ए ननदिया मोरी रे
तबहूं ना मिलेला उदेश, ए ननदिया मोरी रे।
अपने न अइलें पिया भेजलें ना सनेसवा, ए ननदिया मोरी रे।
भेज देले डोलिया कहार, ए ननदिया मोरी रे।
संग के सखी सब छोड़के परइलीख्ए ननदिया मोरी रे।
जात अकेले डरवा होय ए ननदिया मोरी रे।
टोला परोसा मिली डोलिया चढ़वले ए ननदिया मोरी रे।
डाल देले सवुजी ओहार ए ननदिया मोरी रे।
छूटल जाला बाबा के दुआर, ए ननदिया मोरी रे।"[२]

गाँव में आज भी मर्यादाबोध सबसे अधिक है। एक दूसरे का आदर करना और सुख-दुख में भागीदार होना वहाँ की खूबी है। रिश्तों की अपनी एक परिधि है। उसी परिधिमें रहकर जीवन जीना होता है। गाँव में शहरों की भाँति फूहड़पन नहीं है। वहाँ आपसी भाईचारा है। मिलजुलकर रहने की संस्कृति है। प्रायः स्त्रियाँ खेत- खलिहान, पनघट-डगर या कोई कार्य करते समय आपसी वार्तालाप में अपने जीवन के दुख-दर्द को आपस में कह-सुनती है।

वह स्त्री सोचती है कि मेरा पति दिन-रात कितना कार्य करता है। वह कार्य में इतना मग्न हो गया है कि उसे और किसी चीज की सुध नहीं रह गयी है। वह अपनी अर्धांगिनी को

भी भूल गया है। वह सोचती है कि मेरा पति दिन में तो मेरे पासआता ही नही परकम से कम रात को तो अवश्य आ जायें मेरे पास। जिससे मै अपने ह्रदय की बात कह सकूँ। वह कहती है कि जैसे पपीहा और पपिहरी रात में अलग हो जाते है और दिन होते ही वह पुनः आपस में मिल जातें हैं। वह इन्तजार करते-करते सो जाती है। जब उसका पति नहीं आता है तब उसके मन में संशय उत्पन्न होता है, उसे ऐसा लगता है कि उसके पति का सम्पर्क किसी बंगालिन नारी से पड गया है। जब-जब कोयल बोलतीहै तो उसे बडा बुरा लगता हैं। कोयल की बोली में उसे सावती (अन्य स्त्री) की बोली सी सुनाई देती है। उसे अपने जीवन से बडी शिकायत है। सच कहें तो उसे अब जीवन बोझ लगने लगा है। वह अपने आपको कोसती है और कहती हैकि उस पड़ित का बुरा हो जो मेरी लग्न देखकरके इस बेर्दर्दी से सम्बन्ध जोड़ रखा हैं। वह कहती हैं कि इस निर्मोही की याद करके ऐसा लगता कि जैसे मैंने अपनी छाती पर आग रख ली हो। उसे उठते-बैठते कहीं भी चैन नहीं है। अखिरवह करे तो क्या करे। जब-जब वह उसे भूलने की कोशिश करती है तब-तब उसकी याद और तेज आने लगती है-

"आधी-आधी रात रतिया के पिहिके पपिहरा से बैरनिया भइली ना
मोरा अँखिया के रे निनिया से बैरनिया भइली ना।
पिया कलकतिया घरे भेजे नहीं पतिया
से सवतिया भइली ना
कुहु-कुहु कुहुके कोइलिया से सवतिया भइली नाफ
बभना बेदरदी मोरा जनमे के बैरी से लगनिया जोड़ले ना
निरमोहिया बेदरदी से सनेहिया जोड़ले ना।
द्विज महेन्दर इहो गोवेले पुरूविया से सवतिया कइले ना,
विरहिनिया के छतिया में अंगिया धइले ना।" [३]

संसार बड़ा मायावी है। सभी किसी न किसी के माया के फेर में है। काई अकूत धन का मालिक है तो कोई हीरे-जवाहरात से लदा बैठा है। किसी को कोई संतान नहीं है तो किसी के पास संतान है। समय का फेरा बड़ा नाजुक है। वह कब कहाँ किसको किससे मिलवा दे कोई नहीं जानता है। इसीलिए कहा जाता है कि समय बड़ा बलवान है। वह थकहार करके ईश्वर की शरण में जाती है और प्रार्थना करती है और कहती है कि हे ईश्वर हम अपने पति के बिना उस मछली की तरह है जैसे किसी मछली को पानी से अलग कर दिया और वह पानी की याद में तड़प-तड़प कर रह जाये। ठीक वही स्थिति मेरी भी है। आगे कहती है कि-हे ईश्वर हम तो भरी गर्मी में इस प्रकर की तड़प से और दुखी हैं। वह कहती है कि हमको अगर

चिड़िया बना देता तो हम सुबह-सुबह खेतों में चुनने के बहाने जाते शायद अपने प्रियतम से मुलाकात हो जाती। हे ईश्वर अब आपका ही सहारा है। अब इस संसार में मेरा कोई नही है। अब मेरी जीवन रूपी नैया को आप ही पार लगा सकते हो। हे ईश्वर अब आपका सानिध्य छोड़कर हम कही नही जा सकते है-

"हमहूंत रहली जलके मछरिया जालवा फंसवल ए माधो
माधो धई देल तलफी भुंभुरिया कि जियते जरवल ए माधो।
हमहूं रहलीं भोरी रे चिंड़इया खोतवा उजरल ए माधो
माधो डहकीं ले अब दिन रात, बिरहिनिया बनवल ए माधो।
हमहूँ त रहली अबला अनारी पिरीतिया लगवल ए माधो
माधो भागि गइल अंगुरी छोड़ाई कि नइया डूबवल ए मा।"[४]

गाँव में लोकाचार के विविध रूप दिखाई पडते हैं। कुछ स्त्री-पुरुष मर्यादित प्रेमपूर्वक अपना जीवन यापन करते है। जब एक साथ जीवनयापन में कई बार कुछ उतार-चढाव देचाने को मिलते है। पति-पत्नी में आपसी मन-मुटाव हुआ तो आपसी बोल-चाल बंद हो गया परन्तु यह बोल चाल सदा-सदा के लिए बंद नहीं हुआ है। दो-चार दिनों में फिर पहले जैसे हो जायेगा। जिन्दगी अपने पुराने ढर्रे में वापस आ जायेगी। परन्तु कभी-कभी देखने को मिलता है कि स्त्री-पुरुष अपने पति-पत्नी के अलावा अन्य के स्त्री-पुरुष से प्रेम करने लगते है। ऐसी दशा में एक-दूसरें का आपस से मन-मुटाव आरंभ हो जाता है और घर-गृहस्ती चौपट हो जाती है। और जीवन तवाही की ओर चल पडता है। और जब सब कुछ चौपट हो जाता है तो सिवाय पछताने के कुछ नहीं रह जाता है।

महेन्द्र मिश्र कहते है कि एक स्त्री है जो अन्य के पति के साथ खूब हँस-हँस कर बातें करती है। और अपने पति के आते ही चारपाई में पड कर कराहने लगती है। वह अपने पति से चूल्हा-चौका बर्तन-भडवा सब कुछ करवाती है। साफ-सफाई पानी वगैरा तक भरवाती है। अपने प्रेमी को खाने में मिठाई और पक-पकवान देती है और अपने पति को खाने में सेतुआ देती हैं। महेन्द्र मिश्र कहते है कि ऐसी नारी किसी को मिल जाये तो समझो उसके करम ही फूट गयें।वह आगे कहते है कि अपने पति से रो-रो कर बातें करती है और अपने प्रेमी से खूब मटक-मटक कर और हँस-हँस कर बातें करती हैं। वह अपने प्रेमी के सामने बाजूबंद खनकाती हैं और आँख लडाती है और छाती उघार करके चलती है। वह प्रेम में इतना मग्न है कि कई-कई दिनों तक अपनी सास और ननद को भूखे-प्यासे रखती है। और अगर उसका पति कुछ कहता है तो वह चलनी से अपने पति को मारती हैं। महेन्द्र मिश्र कहते है अगर किसी नारी में ऐसे गुण होंगे तो परिवार रसातल में जाने में अधिक समय नहीं लगेगा अर्थात

परिवार की स्थिति बहुत जल्द खराब हो जायेगी-

"अनका पति के देखि चार गाल बात करे
अपना पती के देख खटिया पर कोहँरी।
चुल्हिया लिपावन लागे हँड़िया धोवावन लागे
पनिया भरावन लागे छुए देना देह री।
पूरी ओ मिठाई देत आपना मिलनुवाँ के
आपना पती के देत सतुआ ओ फरूही।
कहत महेन्द्र इहे लच्छन करकसा के
करमे फुटेला जेकरा मिले अइसन मेहरी
आपना पति के देखि रोई-रोई बात-करे
अनका पती के देखि हँसेली ठठार के।
माथा खजुआवे बाजूबंद झनकावे अरू
अँखिया लडावे चले छतिया उघार के।
सांस ओ ननद के तऽ रोजे इ उपास राखे
चूल्ही का चलवना से मारे ली भतार के।
कहत महेन्द्र इहें लच्छन करकसा के
भेजेली रसातल ई तऽ कुल परिवार के।"[५]

प्रत्येक देश में समाज को लेकर कुछ नियम बनाये जाते है। क्योंकि यही समाज उस देश के नागरिकों को सभ्यता और नैतिकता का पहला सबक देता है और यही सभ्य नागरिक उस देश के आन-बान और शान होते हैं। हाँ ये बात जरूर है कि आरंभिक अवस्था में यह प्रक्रिया थोड़ा मधिम रहती है। भारतीय समाज का ताना-बाना समाज के नियमों के अनरूप होता हैं। जो लोग समज के अनुरूप नहीं चलते है। उन्हे समाज दण्ड का प्राविधान भी करता है। मगर इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाता है कि किसी भी कीमत पर परिवार न टूटने पायें। परिवार के मुखिया के तौर पर अपने परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेवारी का निर्वाहन किया जाता है। परन्तु परिवार में कोई ना कोई सदस्य ऐसा निकल ही जाता है कि कि वह मुखिया द्वारा बनाये गये नियमों की धज्जियाँ उडा ही डालता है। भले ही बाद में उसे पश्चात्ताप का बोध हो।

जो स्त्री पतित होती है वह अपने कर्मो के द्वारा एक दिन अपना तो दण्ड पाती ही है साथ-साथ वहअपने परिवार को भी संकट में डाल देती है। वह सूर्यादय होते ही अपने पति और परिवार के सदस्यों के साथ ऊट-पटांग बोलना आरम्भ कर देती है। जिसको सुनकर

आपस में मन मुटाव होता है और परिवार का महौल खराब होता है। वह सद्कर्म के पीछे कभी नहीं जाती है। वह कथा और सद्वचनों का प्रतिकार करती हैं। वह अपने पति और परिवार के लिए सदैव सर दर्द के समान ही होती है। ऐसी स्त्रियाँ सदैव अपने स्वार्थ के लिए जीती है। महेन्द्र मिश्र कहते है भगवान बचाये ऐसी स्त्रियों से ऐसी स्त्रियों को ही कुनार कहा जाता है-

"कलही कुचालीन करकसा ओ फूहरी के
देखे कोई जतरा पर बहुरे ना प्राण के।
भोरे मुंह देखेऊ तो भूखे मरे रात-दिन
अटर-पटर बोले ठीक राखे ना जुबान के।
कथा ओ पुराण के त लगे नाहीं जाले कबों
फोरेले भतार के कपार कूद फान के।
साधू संत माने ना दान ना छेदाम करे
महेन्द्र बचावे अइसन कलही कुनार के।" [६]

समाज में स्त्री-पुरुष के अनेक चित्र देखने को मिलता है। समाज की ये विसंगति समाज का बहुत नुकशान कर बैठती है। इसलिए समय रहते ऐसी विसंगतियों का हल खोज लेना चाहिए। जिससे समाज में एक स्वस्थ महौल बनाया जा सके। महेन्द्र मिश्र कहते हैं कि-एक स्त्री अपने प्रियमत् देखकर अपने अँचर को बार-बार ठीक करने के बहाने कभी उसको उतारती तो कभी उसको ठीक करती है और मुस्कराती हैं। वह अपने पति को देखकर रोनी सूरत बनाती है और उससे काम करा कराकर उसकी कचूमर ढीला कर देती है। जो कुछ भी होता है तो उसे चुपचापअन्दर जाकर खा लेती है। और जब उसका पति उससे कुछ कहता है तो उसे गाली देती हैं। महेन्द्र मिश्र कहते हे पति यदि अपनी भलाई चाहते है तो अब चुप रहो।

"चिहुँकेली बार-बार अँचर उतार चले
बे हँसी के हँसी पति देख कहँरी।
मार-मार हलुआ निकाले ऊ भतरऊ के
डाँट के बोलावे कोई बात में ना ठहरी।
घरे-घरेझगड़ा लगावे झूठ साँच कहं
भूँजा भरी फाँके चुप्पे फोरे आपन डेहरी।
गारी देत बूढ़वा भतार के तो बार-बार
कहत महेन्द्र अबो चूप रह रे ढहरी।" [७]

घर-परिवार तो सामंजस्य से चलता है। वह किसी एकाधिकार का पर्याय नहीं है। जब सभी मिलजुल कर एक साथ रहते है तो उस परिवार में शांति और सद्भावना का वास होता है। जब घर के बड़े बर्जुग अपने बच्चों को खुद समझातें हैं तो उनकी भलाई के लिए ही करते हैं। मगर परिवार के किसी सदस्य को अपने ही बुर्जुगों का डाटना नागवार गुजरे तो वह अच्छा नहीं है। एक नवब्याहता स्त्री को अपनी सास की जमुहाई शेरनी की जमुहाई लगती है। अपने ससुर कुछ कहना सिंह की गर्जनाद सी लगती है। ननद की सलाह नागिन की फुफकार सी लगती हैं। देवर का पहरा डाकिनी सी लगती है। वह दिन-रात अपने पास-पडोसियों से झगड़ती रहती है आपने पति को भला-बुरा कहती रहती है। वह कर्कश वाणी बोलती है। ऐसी स्त्रियाँ जिस घर में रहती है उस घर का सत्यानाश कर देती है-

"सास के विलोके सिंहिनी सी जमुहाई लेत
ससुर के विलोके बार-बार मुँह बावती।
ननद के विलोके नागिन सी फुंफकार करें
देवर के विलोके डाकिनी सी डेरवावती।
रात दिन झगरे मोछ जारे ऊ पड़ोसियन के
पति के विलोके खाँव-खाँव कर धावती।
कर्कशा कुचाली कुबुद्धि कलही जो नार
करम जेकर फूटे नारी अइसी घरे आवती।"[८]

अब जब उस स्त्री को कोई उपाय नहीं सूझा तो वही परम्परागत रास्तें को अख्तियार किया जो हर भारतीय परिवारों में प्रायः शादी-ब्याह के बाद होता है। वह स्त्री ने अपने पति के कान भरने आरम्भ कर दिया और अपनी सास-ननद की बुराई करने लगी और समाज को चुनौति देना शुरू कर दिया। वह कहती है कि अब हमसे सास और ननद के ताने अब नहीं सुने जा रहें है। अब वह अपने पति को लेकर अलग रहेंगी। वह आगे कहती है कि-हमको महला-दुमहला नहीं चाहिए। हम मडईया में रह लेंगे हमको पूरी-पकवान नहीं चाहिए हम सतुआ खा कर रह लेगे। हमको कोई नया कपड़े का थान नही चाहिए हमारे पास जो है उन्हीं में गुजारा कर लेगें और नाही कोई अन्य सुख-साधन चाहिए। वह चटाई बिछा कर के अपना काम चला लेगी। हमको सिर्फ अपने पति का साथ चाहिए हम अपने पति के साथ अपना जीवन यापन कर लेगें। भरतीय परम्परा में पति परिवार का सबसे महत्वपूर्ण अंग होता है-

"सासू ननदिया मिलि के कइली ह झगड़वा पिया लेके अलगा रहब।
ननदी के बोलिया ना सोहाय पिया लेके अलगा रहब।
कोठा अटारी हमरा मनहूँ ना भावे पिया ले के अलगा रहब।

टूटहीं मड़ईया बा हमार पिया ले के अलगा रहब।
पूरी मिठाई हमारा मनहूँ ना भावे पिया ले के अलगा रहब।
सतुआ आ भूँजा बा हमार पिया ले के अलगा रहब।
तोशक तकिया हमरा मनहूँ ना भावे पिया ले के अलगा रहब।
टूटही चटइया बा हमार पिया ले के अलगा रहब।
गोवेलें महेन्दर मिसिर इहो रे पुरूबिया पिया ले के अलगा रहब
लागल बाटे आसरा तोहार पिया ले के अलगा रहब।" [६]

जब हम अपने जीपन के मूल रूप पर आते हैं तो हमें यह एहसास होता है कि ये दुनियादारी सब बेकार की चीज है। असली पूंजी तो अपना कर्म है। अपना परिवार है। वह अपने गुजरे हुए पलोको याद करता है औरबिसूरती है। वह कहती है कि-हे ईश्वर तूने हमको इतना सुन्दर रूप क्यों दिया। बेकार में इतना अच्छा स्वाभाव दिया जिससे देखकर मन में भोग-बिलास उत्पन्न होता है। जब मै सोलह श्रंगार करके चलती हूँ तो हजारे आँखे मुझें देखती है। लोगो को सुख मिलता है। अब ऐसे में भला लोगो का दिल मैंकैसे दुखाऊ। महेन्द्र मिश्र कहते हैकि ईश्वर जिसके कपार में जो लिखा है उसे वही भोगना पड़ता है-

"काहे को विधाता अइसन सुन्दर सरूप दीन्हों
सरस चतुराई निपुनाई छवि छाई है।
नाहक विलास भोग जगत में बनाया दीन्हों
नाहक सोलह सिंगार अंबर बनाई है।
नाहक विश्राम सुखधाम भी बनाए हाय
दुनिया के विभव राज नाहक बनाई है।
द्विज महेन्द्र रामचन्द्र लखन सिया के संग
भाल अंक लिखत ब्रह्मा खूब ही भुलाई है।" [१०]

भारतीय समाज में जब हम अपनी घातों-प्रतिघातों से थकहार जाते हैं तो हम अपने पुराणों,चरित्र नायकों से प्रेरणा लेते हैं। रामचरित मानस जन-जन का कठांहार हैं। गाँवो में पुरुषें का आचारण राम जैसा और स्त्रियों का चरित्र सीता के समान माना जाता है। सीता चरित्र किसी भी स्त्री के विपरीत समय में बड़ा सम्बल प्रदान करता है। वह सीता के बनवास की घटना को याद करके अपने जीवन को काटती है। जनश्रुत है कि राम ने जब सीता को अयोध्या से निकाल दिया जब वह बनवास में बारह वर्षो तक रही थी। वह कहती है कि जब सीता अपने विपरीत समय में नहीं डरी तो हम कैसे डरें। वह प्रकृति के साथ थी वह राजसी भोजन को त्यागकर कंद-मूल फल खाकर रहती है। बह जंगल में डरती नहीं बल्कि पशु उसके

सहचर बन जाते है। वह जंगल में आदमियों से नहीं डरती परन्तु जंगल में राक्षसों के मायावी चालों से डरती है। फिर भी वह हिम्मत से काम से लेती है-

"तुम कैसे सीता घोर विपिन मँह जैहों।
गर्जत व्याघ्र सिंह बहुतेरो पर्वत देखि डेरैहों।
उहाँ सयानी लागत पानी घरहीं विपत गवैहों।
नदी भयंकर देखि डेरैहों केवट कहीं न पैंहो।
काँट कूश गरीहें चरणों में धूप लगी कुम्हीलैहों।
चौहट हाट बाजार नहीं है कंद मूल फल खैहों।
कभी कभी ओ भी ना मिलीहें भूखे ही रहि जैहों।
राकस सब माया करते हैं देखि देखि घबरैहों।
द्विज महेन्द्र कहवाँ ले बरजों कुल के नाम नसैहों।"[११]

"इन गीतों में लोकजीवन की लम्बी-लम्बी कथाएं होती हैं, जिनमें गृहस्थ्य जीवन के सुख-दुख की मार्मिक झांकिया होती हैं, कुछ आपबीती कुछ जग बीती, ये गीत कथात्मक अधिक वर्णनात्मक कम होते हैं। इनमें ऊहापोह को स्थान नहीं, इतिवृत्तात्मकता नहीं वरन् चित्रात्मकता होती है। इन गीतों में नारी-जीवन के द्वारा नारी जीवन के लिए नारी जीवन की स्वकथित करुण कहानी होती है, जो तत्कालीन समाज का व्योरेवार कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करके नारी की दशा एवं दिशा का अत्यन्त स्वाभाविक चित्र उकेरती है।"[१२]

इस प्रकार हम निष्कर्ष के तौर पर कह सकते हैं कि महेन्द्र मिश्र के लोकगीतों में नारी-जीवन के अनेक चित्र मिलते हैं। भारतीय समाज में नारी जीवन के सास-ससुर, ननद-भौजाई, देवर, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, सखी-सहेली, और अन्य रिश्तें होते हैं। समाज में वह किसी की माँ है तो किसी की पत्नी भी हैं। महेन्द्र मिश्र स्वयं एक कुशल गायक थे। वे अपने जीवन में नारी के सुखद और दुखद दोनो पक्षों को बहुत समीप से देखा था। वे कभी-कभी वेश्याओं की महफिल में जा पहुँचते थे। और उनके आलाप को बडे ध्यान से सुनते थे। नारी जीवन की त्रासदी यह है। नारीपरिवार की धूरी मानी जाती है। वह स्वछन्द नहीं है। उसके ऊपर परिवार, देश, समाज का बहुत बडा भार है। वह पुरुष की भाँति उन्मुक्त भैरा नहीं है कि जब चाहे और जहाँ चाहे भ्रमण के लिए निकल लाये और स्त्री प्रसंग कर ले। भारतीय परिवेश में नारी की दुर्दशा का कारण संयुक्त परिवारों की भूमिका भी मानी जाती है। ननद-भौजाई का बैर जग जाहिर है। लेकिन अब धीरे-धीरे परिदृश्य बदल रहा है। शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो रहा है जिससे स्त्री-पुरुष के व्यवहार में बदलाव आ रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. १. लोकगीतों की भावभूमि-कु.सरोज-लोक संस्कृत-सम्मेलन पत्रिका -सम्वत २०१० चैत्र पृष्ठ सं. २८५

२. कविता कोश से

३. वही

४. वही

५. वही

६. वही

७. वही

८. वही

९. वही

१०. वही

११. वही

१२. लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या-श्रीकृष्णदास पृ०.सं.७१ द्वारा लोक साहित्य अभिव्यक्ति और अनुशीलन सम्पादक- रविनन्दन सिंह, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद प्रथम संसकरण - २०१६।

-एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी)

महामाया राजकीय महाविद्यालय कौशाम्बी (उ०प्र०)

दूरभाष संख्या :९४५५६२४३९७

ई-मेल : dr.ajaykumarhindi@gmail.com

⊙

उत्तर छायावादी कविता में गूँजता प्रखर राष्ट्रीय स्वर

–डॉ० अरविन्द कृष्ण उपाध्याय

उत्तर छायावादी कविता के समय में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन पूरे उत्साह में था। देश यह समझ चुका था कि अब स्वतंत्रता संग्राम को अनवरत रखना है, अब अंग्रेजी राज अपने अंत पर है। क्रांति और बलिदान का जयघोष पूरे भारत में गूँज रहा था। यह वही दौर था जब जलियाँवाला बाग में नरसंहार हुआ, असहयोग आंदोलन प्रारम्भ हुआ, स्वदेशी पर जोर देकर विदेशी का बहिष्कार प्रारम्भ किया गया, साइमन कमीशन का बहिष्कार हुआ, गाँधी जी ने डांडी यात्रा करके नमक सत्याग्रह प्रारम्भ किया, भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को नृशंस फांसी दी गयी, रावी तट पर पूर्ण स्वराज की माँग की गयी तथा १९४२ में भारत छोड़ो आंदोलन प्रारम्भ हो गया। अब ऐसी सामाजिक एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि से साहित्य कैसे अछूता रह सकता था। तत्कालीन हिन्दी साहित्य ने स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, राष्ट्रीयता की भावना को उद्दीप्त करने वाली कवितायें भी लिखी, कहानी, उपन्यास लिखे साथ ही साथ हिन्दी के अनेक साहित्यकार स्वतंत्रता आंदोलन में जेल भी गये।

हिन्दी साहित्य प्रारम्भिक दौर से ही पूरे जोर शोर से स्वतंत्रता आंदोलन में भाग ले रहा था। आंदोलन के साथ-साथ राष्ट्र के निर्माण हेतु अन्य भी जो आवश्यक तत्व हैं जो राष्ट्र को नींव आधारित मजबूती प्रदान करते हैं उन पर साहित्य अनवरत कार्यरत था। मनुष्य ही राष्ट्र का निर्माण करते हैं और मनुष्य की बेहतरी ही राष्ट्र की बेहतरी बनकर सामने आती है। हिन्दी के साहित्यकारों ने इस विषय को भली-भांति समझा था।

उत्तर छायावादी कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारी दिनकर, रामेश्वर शुक्ल अंचल, हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा और भगवतीचरण वर्मा आदि ने अपनी कविताओं में राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य का पूर्ण निर्वहन करते हुये कवितायें लिखी।

माखनलाल चतुर्वेदी की कवितायें भारतभूमि पर ओज एवं उत्साह का संचार कर रही थी। माखनलाल चतुर्वेदी जी जब लिखना शुरू किये तो वह दौर ही राष्ट्रभक्ति का दौर था। जन सामान्य तक में देशभक्ति कूट-कूट कर भरी थी। ऐसे वातावरण में उनकी आत्मा पर जो परिवेश का प्रभाव पड़ा उसने चतुर्वेदी जी को लेखन के साथ-साथ जीवन में भी राष्ट्रभक्त बना

दिया। इन्होंने कई बार कष्टदायक जेल यात्रायें की। १९३० में 'कैदी और कोकिला' इन्होंने जबलपुर सेन्ट्रल जेल में ही लिखी। इसी तरह माखनलाल चतुर्वेदी जी की जो कविता जन-जन को कंठस्थ है- ''पुष्प की अभिलाषा''। इस कविता को भी इन्होंने बिलासपुर जेल में ही लिखी थी।

राष्ट्रभक्ति के प्रचंड और उत्कर्ष स्वरूप का दर्शन चतुर्वेदी जी की कविताओं में मिलता है। एक कविता में क्रांति हेतु अपने पराक्रमी पूर्वजों जैसा होने की कामना करते हैं। उदाहरण देखिए-

परमपूज्य राणा प्रताप का हृदय हमें दो हे भगवान,
स्वाभिमान, स्वाधीन भाव पर होवें हम समुदित बलिदान,
लोकमान्य से अभय हृदय हों छेड़े हम स्वराज की तान,
सबल शिवाजी का दिल लेकर करें दासता का अवसान। [१]

चतुर्वेदी जी सिर्फ अपने देश को प्रेम ही नहीं करते, सिर्फ उस पर बलिदान होने की ही इच्छा नहीं रखते अपितु वह अपनी मिट्टी पर गर्व भी करते हैं। इसी प्रेम और गर्व के सम्मिश्रण से यह सम्भव हो पाया है कि अत्याचारियों के प्रति उनमें रोष भावना है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें खुलकर ललकारने का साहस, यही साहस वीरता एवं बलिदान की पृष्ठभूमि बनाता है। यही भाव जब उच्चतम स्तर पर आता है तो देशभक्ति सर्वोच्चतम स्तर का पुण्य बन जाती है। बिलासपुर जेल से लिखी गयी कविता 'पुष्प की अभिलाषा' का उदाहरण देखिए-

''मुझे तोड़ लेना वनमाली।
उस पथ में देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक।''[२]

सुभद्रा कुमारी चौहान राष्ट्रवादी कवयित्रियों में प्रमुख कवयित्री हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता देश के प्रति अनुराग की कविता है। अपने अंतर-आत्मा में गूंजती देश भक्ति को मुखर स्वर देकर सुभद्रा कुमारी चौहान भारत भूमि पर अमर हो गयीं। उनके जीवन की प्रेरणा रहीं रानी लक्ष्मीबाई। सुभद्रा जी की कविता में स्वाधीनता, देशप्रेम और उत्सर्ग के प्रति वह पूज्य भाव है जो सभी स्थितियों में शाश्वत रूप से उपस्थित भावों को झकझोर देता है।

'झाँसी की रानी' ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित एक वीरभावपूर्ण रचना है। इस कविता का ओजतत्व भाषा और छंद तक सीमित न रहकर कविता की आत्मा तक में व्याप्त है। इसके साथ ही साथ भारतभूमि के जन-जन में यह कविता वीर-गीत के रूप में झंकृत होती

है। रानी लक्ष्मीबाई के पराक्रम और बलिदान से भारतवासी प्रेरणा लेते हैं। इस प्रेरणा को सुभद्रा जी ने लोक स्वर बना दिया। झाँसी की रानी की शहादत पर आज पूरा देश कृतज्ञ है। उदाहरण देखिए-

"जाओ रानी याद रखेंगें
ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान,
जगावेगा स्वतंत्रता अविनाशी।"[३]

बालकृष्ण शर्मा नवीन प्रखर राष्ट्रवादी कवियों में से एक हैं। नवीन जी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, एनी बेंसेंट और गणेश शंकर विद्यार्थी प्रभृति क्रांतिकारियों के सम्पर्क में रहे। ऐसे परिवेश में रहने के नाते इनकी भी प्रवृत्तियाँ क्रांतिकारियों जैसी हो गयीं फलस्वरूप इन्हें कई बार जेल यात्रायें करनी पड़ीं। इनके जेल के साथियों में पं० जवाहर लाल नेहरू, राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन, देवदास गाँथी तथा महादेव देसाई थे। नवीन जी ने जीवन एवं लेखन दोनों राष्ट्र को समर्पित कर दिया था। स्वयं जेल यात्रायें करते रहे और कलम राष्ट्रधर्म में पूर्णतया प्रवृत्त रही। इनकी एक रचना "हिन्दुस्थान हमारा है" है। कविता के शीर्षक में ही एक आत्मीयता है, एक ओज है और एक ललकार है विदेशी आक्रांताओं को। इस कविता में कवि को यह गर्वबोध है कि सभ्यता का सर्वप्रथम विकास यहाँ हुआ। गर्व इस विषय का भी है कि देश का गौरवशाली इतिहास रहा है। कविता से उदाहरण दृष्टव्य है-

"कोटि-कोटि कंठो से निकली/आज यही स्वर धारा है।
भारतवर्ष हमारा है, यह/हिन्दुस्थान हमारा है।
जिस दिन नभ में तारे छिटके/जिस दिन सूरज चाँद बने,
तबसे है यह देश हमारा/यह अभियान हमारा है।" [४]

भगवती चरण वर्मा उत्तरछायावादी कविता के प्रमुख कवि हैं। प्रेम एवं मस्ती इनकी प्रमुख काव्य प्रवृत्ति है लेकिन जब उत्तर छायावादी कालखण्ड में ही ओज एवं राष्ट्रीयता का प्रखर स्वर गूंज रहा था तो वर्मा जी उससे अछूत कैसे रहते। कई कवितायें उन्होंने युगधर्म निर्वहन में लिखी। भू-वंदना कविता में उन्होंने राष्ट्र भूमि के प्रति अपने उदात्त विचारों एवं भावों को अभिव्यक्त किया है। "भू-वंदना" कविता से उदाहरण देखिए-

"हिमगिरी सा उन्नत नव मस्तक,
तेरे चरण चूमता सागर,
श्वासों में हैं वेद ऋचाएँ,
बानी में है गीता का स्वर,

ऐ संस्कृति की आदि तपस्वनि, तेजस्वनि अभिराम।
मातृ-भू शत-शत बार प्रणाम।।'' [५]

हरिवंश राय बच्चन प्रथम दृष्ट्या हालावाद के प्रवर्तक एवं समर्थक माने जाते हैं लेकिन जब हम बच्चन की कविताओं का विस्तृत एवं गम्भीर अध्ययन करते हैं तब हमें यह प्रतीत होता है कि बच्चन जी की कवितायें समाज के प्रति अपने दायित्वों को लेकर बहुत गम्भीर हैं। समाज के लोगों से ही मिलकर राष्ट्र का निर्माण होता है।

अब यह स्पष्ट है कि समाज के प्रति दायित्व निर्वहन ही राष्ट्र के प्रति परोक्ष दायित्व निर्वहन है। राष्ट्र के लोग ही राष्ट्र की इकाई हैं। लोगों से ही मिलकर राष्ट्र का निर्माण होता है। राष्ट्र के लोगों की खुशहाली में ही राष्ट्र की सम्पन्नता है। राष्ट्र के जन-जन में अगर समृद्धि होगी तभी राष्ट्र भी समृद्ध होगा और अगर इसके विपरीत राष्ट्र के लोगों में विपन्नता है, गरीबी है, लोग अन्न एवं दवाओं के अभाव में दम तोड़ रहे हैं तो यह सामूहिक तौर पर राष्ट्र की ही विफलता/विपन्नता मानी जायेगी। हरिवंशराय बच्चन जी के समय में बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा। लोग भूखों मरने लगे, किसी को भोजन नहीं मिल पा रहा था। लोग अन्नाभाव में अत्यंत तेजी से दम तोड़ रहे थे। देश के कई साहित्यकार ऊँची आवाज में अपनी बात रख रहे थे। बच्चन जी भला कैसे पीछे रहते। बंगाल के अकाल को देखकर उनका संवेदनशील हृदय दुःख से भर आ रहा था, उन्होंने 'बंगाल का काल' कविता लिखी। बंगाल का काल कविता से हम यह समझ सकते हैं कि बच्चन जी राष्ट्र के प्रति कितना गम्भीर युगबोध निर्वाह कर रहे थे। बच्चन जी की संवेदनशीलता का उदाहरण दृष्टव्य है-

''गैया-गोरू, बैल बछेरू,
बोरी-बँधना, कपड़ा-लत्ता,
जर-जमीन सब बेच-बाचकर,
पुश्तैनी घर बार छोड़कर
चले आ रहे हैं कलकत्ता।'' [६]

बच्चन जी ने अपनी कुछ कवितायें लोक प्रचलित धुनों पर भी लिखी है। लोक की समस्या को लोकशैली में प्रस्तुत कर देना कवि की सबसे बड़ी सफलता है। आजाद भारत में विकास के साथ-साथ यह स्थिति भी आती गयी कि रूपया समाज में सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता गया। आज की भागम-भाग वाली दुनिया में तो पैसे की भूमिका अत्यधिक विस्तृत होती जा रही है। बच्चन जी ने पैसे के बढ़ते एकाधिकार और वर्चस्व पर तंज कसते हुये लोकधुन में एक कविता लिखी। कविता से उदाहरण दृष्टव्य है-

''गाँधी न नेता,

जवाहर न नेता,
नेता है, सैयाँ, रूपैया।।" [७]

राष्ट्रीयता सिर्फ प्रत्यक्ष तौर पर सीमा और सुरक्षा की बात करने से नहीं प्रतिबिम्बित होती बल्कि हर उस कविता, साहित्य या भाव में झलकती है जिसमें राष्ट्र का कल्याण निहित हो। राष्ट्रीयता को जब हम जातीयता से जोड़ देते हैं तब राष्ट्रीयता के क्षितिज का और विस्तार हो जाता है। बच्चन की राष्ट्रीयता राष्ट्रीयता के वैचारिकी की पोषक है। राष्ट्रीयता की आधारभूमि की पोषक है। फिर भी जब तत्कालीन वातावरण ने बच्चन जी पर अपना प्रभाव डाला तो उन्होंने भी प्रत्यक्ष राष्ट्रीयता व्यक्त करने वाले शब्दों का प्रयोग कर कवितायें लिखीं। मधुशाला पर भी राष्ट्रीयता का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगत होता है। मधुशाला की शब्दावली भले ही सुरा और सोमरस के आस-पास की हो लेकिन उसकी व्यंजना सदैव समाज के परिप्रेक्ष्य में रही है। मधुशाला से ही प्रखर राष्ट्रीयता का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"धीर सुतों के हृदय रक्त की/आज बना रक्तिम हाला,
वीर सुतों के वर शीशों का/हाथों में लेकर प्याला,
अति उदार दानी साकी है/आज बनी भारतमाता,
स्वतंत्रता है तृषित कालिका/बलिवेदी है मधुशाला।।" [८]

नरेन्द्र शर्मा उत्तर छायावादी कवियों में से एक कवि हैं। नरेन्द्र शर्मा का भी वही समय था जो उत्तर छायावादी कविता के अन्य कवियों का था। गुलाम भारत में रहकर, भारत की हालत देखकर नरेन्द्र शर्मा का भी मन विह्वल हो जाता था। वैसे मूल रूप में शृंगार की कवितायें लिखने वाले शर्मा जी समय-समय पर राष्ट्र कल्याण एवं लोकहित पर भी कवितायें लिखते रहे। 'जय जयति भारत भारती' कविता नरेन्द्र शर्मा ने इसी भाव से भावुक होकर लिखी। अन्य भी कई कवितायें उल्लेख हैं। 'जय जयति भारत भारती' कविता में नरेन्द्र शर्मा लोक कल्याण हेतु यज्ञ में समिधा अर्पित करते ब्राह्मण की तरह राष्ट्र कल्याण की प्रार्थना करते हैं। शर्मा जी की प्रार्थना गंगाजल जैसी पवित्र भावना की वाहक है। 'जय जयति भारत भारती' कविता से एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"वरदान दो माँ भारती
जो अग्नि भी चंदन बने!
शत नयन दीपक बाल
भारत भूमि करती आरती
जय जयति भारत भारती।" [९]

भारत के एवं हिन्दी साहित्य के प्रमुख राष्ट्रीय कवियों में एक हैं रामधारी सिंह दिनकर।

दिनकर जी प्रखर राष्ट्रीय चेतना के साहित्यकार हैं। उन्होंने गुलाम भारत में भी और आजाद भारत में भी राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व का पूर्ण निर्वहन किया, दूसरे शब्दों में कहें तो साहित्य में राष्ट्रीय भावना का नेतृत्व किया। दिनकर जी ने अपनी अधिकांश कृतियों में मूल्यों की स्थापनाओं पर जोर दिया। उन्होंने उर्वशी के माध्यम से काम आध्यात्म के विषय को प्रतिष्ठित किया। रश्मिरथी के माध्यम से उन्होंने उदात्त मूल्यों की स्थापना की तथा जातिवाद की समस्या पर बड़ा प्रहार किया। दिनकर जी ने १९३८ में हुंकार, १९४६ कुरूक्षेत्र, १९६३ में परशुराम की प्रतीक्षा आदि कवितायें लिखकर राष्ट्रीय भावना को बल प्रदान किया।

एक सैनिक जो सीमा पर खड़ा होता है हर वक्त उसके प्राणों पर संकट रहता है, लेकिन उस स्थिति में भी उसे निर्भीक बनाती है देश की कृतज्ञ भावना, उसका अपने कार्य के प्रति गर्व बोध। उसे अपने कर्म की पवित्रता और महानता का सदैव बोध रहता है। उसके साथ सदैव यह भाव रहता है कि मेरे समर्पण, त्याग, बलिदान और शहादत से देश की समृद्धता, सम्पन्नता तथा अस्मिता सुरक्षित है। दिनकर जी ने एक सैनिक के इन्हीं पावन भावों को अपनी कविता में स्थान दिया हैं 'जियो जियो अय हिन्दुस्तान' कविता से एक उदाहरण दृष्टव्य है–

"वीर-प्रसू माँ की आँखों के हम नवीन उजियाले हैं,
गंगा, यमुना, हिंद महासागर के हम रखवाले हैं।
तन मन धन तुम पर कुर्बान। जियो जियो अय हिंदुस्तान।"[१०]

भारत की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी भारतीयता के जो विशेष गुण हैं वो उसके खुद रंग एवं स्वतःस्फूर्त गुण हैं, आज के हजारों वर्ष पूर्व के रचे गये भारतीय वेदों में दया, करूणा, परोपकार, शील और संयम का संदेश दिया गया है। भारतीय भूमि पर मानवीय मूल्यों के भंडार हैं। हर कार्य में लोकहित एवं संवेदनशीलता के तत्व अभिव्यक्त हैं। भारत भूमि मूल्यों एवं आस्थाओं की पुण्य भूमि है। इस पुण्य भूमि पर और भी मूल्य युक्त साहित्य रचे गये। भारत भूमि के सकारात्मक वातावरण ने साहित्य को रचना का अनुकूल अवसर दिया फिर उत्कृष्ट साहित्य ने भारत की मूल्य परम्परा में श्रीवृद्धि की। इस प्रकार दोनों एक दूसरे का पूरक होकर लोक एवं विश्व का कल्याण कर रहे। दिनकर जी भारतभूमि की उत्कृष्टता को "नमन करूँ मैं" कविता में लिखते हैं। उदाहरण दृष्टव्य है–

"मानवता के इस ललाट चंदन को नमन करूँ मैं?
किसको नमन करूँ मैं भारत। किसको नमन करूँ मैं?"[११]

इस प्रकार हम स्पष्ट देखते हैं कि उत्तर छायावादी कविता का मूल स्वर ही राष्ट्रीय एवं सामाजिक है। उत्तर छायावादी कवियों को समाज के लोगों के प्रति पूर्ण सहानुभूति तथा उनकी

पीड़ाओं एवं तकलीफों को लेकर पर्याप्त संवेदनशीलता भी है। साहित्य का यही युगधर्म है। इसके साथ ही साथ चूंकि उत्तर छायावादी काल में भारत गुलाम था, तो उसके साथ ही साथ उत्तर छायावादी कवियों पर यह दायित्व भी प्रभावी हुआ कि अब राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारी एवं प्रबल जवाबदेही का निर्वहन किया जाय। उत्तर छायावादी कवियों ने अग्रणी पंक्तियों में खड़े होकर राष्ट्र की जयघोष लगायी। इसके साथ ही साथ अपनी कविताओं के माध्यम से जन-जन के मनोबल को जागृत करने तथा उनमें नई ऊर्जा का संचार करने का काम अपनी कविताओं के माध्यम से किया। कवियों ने भारतभूमि के उज्ज्वल एवं गरिमामय इतिहास का, तथा अपने ऐतिहासिक पुरुषों के पराक्रम का ओजपूर्ण उल्लेख करके जन-जन में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया।

स्वीकृति

डा० अरविंद कृष्ण उपाध्याय भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (ICSSR) की पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप धारक हैं। प्रस्तुत शोध पत्र अधिकांशतः भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद द्वारा प्रायोजित पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप के फलस्वरूप हो रहे शोध कार्य का परिणाम है। हालाँकि बताये गये तथ्यों, व्यक्त की गयी राय और अंततः अर्जित निष्कर्षों की पूर्णतः जिम्मेदारी लेखक की है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, आधुनिक हिंदी कविता, २०१७, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद २११००१, पृ०-४१
२. माखनलाल चतुर्वेदी, आधुनिक कवि-६, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ०-१
३. विश्वम्भर मानव, रामकिशोर शर्मा, आधुनिक कवि-२०१६, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-२११००१, पृ०-१२०
४. विश्वम्भर मानव, रामकिशोर शर्मा, आधुनिक कवि-२०१६, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-२११००१, पृ०-६६
५. विश्वम्भर मानव, रामकिशोर शर्मा, आधुनिक कवि-२०१६, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-२११००१, पृ०-४५
६. हरिवंश राय बच्चन, आधुनिक कवि-१६, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ०-८०
७. विश्वम्भर मानव, रामकिशोर शर्मा, आधुनिक कवि-२०१६, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-२११००१, पृ०-१३६
८. डॉ० श्यामसुंदर घोष, बच्चन व्यक्तित्व और रचनाकार-२००५, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, पृ०-३४

६. www.kavitakosh.com
१०. www.kavitakosh.com
११. www.kavitakosh.com

-पोस्ट डॉक्टोरल फेलो ICSSR
(भारतीय सामाजिक विज्ञान
अनुसंधान परिषद्)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

हाशिये पर कृषक : 'फांस' और 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास के विशेष सन्दर्भ में

–वन्दना पटेल

भारत गाँवों का देश है और कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की बुनियाद है। किसानों की उन्नति से ही देश की प्रगति सम्भव है, किसान पूरे देश का अन्नदाता है, देश में किसान को हम अन्नदाता, धरतीपुत्र, भाग्यविधाता, अर्थव्यवस्था की नींव तथा न जाने किन-किन नामों से पुकारते हैं। वह किसान जो अपने खून पसीने से भूमि सींचता है, रोपता है और सम्पूर्ण देश की जनता के लिए अन्न उत्पन्न कर उसका पेट भरता है। उन्हीं किसानों द्वारा आत्महत्या की बढ़ती हुई घटनाओं ने खेती में व्याप्त संकट की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया है। कृषक जीवन तथा खेती का संकट केवल भारत में ही नहीं, अपितु यूरोप और अमेरिका जैसे देशों में भी व्याप्त है। अमेरिका और यूरोप जैसे देशों में भी आत्महत्या की समस्या तथा लोग खेती छोड़ रहे हैं। किसानों का विस्थापन गाँवों से शहरों की ओर हो रहा है। अपने खेती का स्वामी किसान अब औद्योगिक कारखानों बड़े-बड़े नगरों में मजदूर बन चुके हैं। स्वाभिमानी किसान बनने की इस प्रक्रिया में सत्ता व्यवस्था तथा हिंसक उदारवादी आर्थिक नीतियाँ जिम्मेदार है। वह शोध आलेख फांस तथा तेरा संगी कोई नहीं उपन्यासों में उदारवादी नीतियाँ तथा कृषक जीवन से पलायन इन सब का किसानों पर पड़ने वाले दुष्परिणामों का जीवंत दृश्य प्रस्तुत करता है।

आधुनिक जीवन में किसान और कृषि कार्य हाशिये पर है, किसान के हित के बनी नीतियाँ भ्रष्टाचार की भेंट चढ़कर किसान का ही गला घोट देती हैं। जमीन से बेदखली भूमिहीन होना, बाजारवाद, सरकारी बैंकों में कर्ज अदायगी न करने की समस्या तथा प्राकृतिक आपदा बाढ़, तूफान, ओला, सूखा आदि का सामना करता है। आँधी ठण्डी, गर्मी, बरसात तीनों मौसम में तनकर खड़ा है लेकिन दुर्भाग्य है कि जो किसान अन्न पैदा करता है वही दो वक्त की रोटी के लिए भूखा सो रहा है।

हिन्दी में किसानों की बात करे तो सर्वप्रथम मुंशी प्रेमचन्द का नाम आता है जिन्होंने गोदान के माध्यम से सम्पूर्ण किसान जीवन तथा उसकी परिस्थितियों को बारीकी से उजागर किया है। ''होरी की फसल तो सारी की सारी डांड हो चुकी थी वैशाख तो किसी तरह काटा,

मगर जेठ लगते-लगते घर में अनाज का एक दाना न रहा। पाँच-पाँच पेट खाने वाले और घर में अनाज नदारद। दोनों जून न मिले एक जून मिलना ही चाहिए। उधार ले तो किससे? गाँव के छोटे बेड़े महाजनों से तो मुँह चुराना पड़ता है, मजदूरी भी करें तो किसकी?[१] यह समस्या सिर्फ होरी की नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारत की समस्या है जो आज भी विद्यमान है।

संजीव का 'फाँस' और मिथिलेश्वर का 'तेरा संगी कोई नीं' उपन्यासों में किसानों की दर्दनाक स्थिति को दर्शाया गया है। आज किसानों की इस स्थिति का जिम्मेदार उदारीकरण, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, भ्रष्टाचार आदि नीतियां किसानों को हासिये पर कर दिया है। जिसकी वजह से किसान आत्महत्या और किसान जीवन से पलायन करने को विवश है। 'फाँस' उपन्यास किसानों की आत्महत्या पर केन्द्रित है। महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में जीवन व्यतीत करने वाले किसानों के जीवन तथा उनके जीवन में आने वाली तमाम विनाशकारी समस्याओं के सभी पहलुओं को लेखक ने बहुत ही बारीकी से प्रस्तुत किया है फाँस उपन्यास क माध्यम से संजीव किसनों की उन दर्दनाक स्थितियों को दिखाने की कोशिश करते हैं, जिससे केवल विदर्भ का किसान ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतीय किसान को गुजरना पड़ रहा है। उपन्यास की कथावस्तु की शुरुआत महाराष्ट्र के 'यवतमाल' जिले से होती है, जो आधा वन और आधा गाँव। एक ओर देखो तो जंगल दिखाई देता है, दूसरी ओर पठार। वन-गाँव का चित्र संजीव इस तरह खींचते हैं। ''भला कोई कह सकता है कि सुखाइ के ठनठनाते यवतमाल जिले के इस पूरबी छोर पर 'वनगाँव' जैसा कोई गाँव भी होगा, जो आधा वन हागेा, आधा गाँव, आधा गीला होगा, आधा सूखा। स्कूल में लड़के के साथ लड़कियाँ भी, जुए में भैंस के साथ बैल भी। जो भी होगा आधा-आधा।[२] बीज बोने से लेकर खाद्य-पानी, घर परिवार, उत्पादित फसलों को बेचने जैसी किसान की बुनियादी समस्याओं को लेखक ने इस उपन्यास में प्रमुखता दी है। शिबू के माध्यम से किसानों की बदहाली को दिखाया गया है। किसान अपने परिवार का पालन-पोषण, बेटी की शादी, बेटे की पाई के लिए अपने खेत तक भी बेंच देता है। संजीव 'फाँस' उपन्यास के माध्यम से पात्रों के संवाद द्वारा उदारवादी एवं नव उदारवादी नीतियों का भारत में कृषि और किसानों पर इइका क्या प्रभाव पड़ा गहनता से अभिव्यक्त किया है। उपन्यास के शुरुआत में ही एक किसान फाँसी लगा लेता है पता लगता है कि उसकी फसले दो-दो बार बर्बाद हो चुकी थी और कर्ज ले रखा था। कर्ज के बोझ तले दबा हताश होकर आत्महत्या कर लेता है। शिबू की पत्नी शकुन्तला कहती है कि 'इस देश का किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कज में ही जीता है और कर्ज में ही मर जाता है।'[३] शकुन्तला का यह कथन किसान जीवन के संघर्ष को व्यक्त करता है।

कृषि ऋण किसानों की सबसे बड़ी समस्या है- 'नाबार्ड के आँकड़े बताते हैं कि देश के

किसानों पर लगभग १७ लाख करोड़ रुपये का कर्ज है जिसमें तमिलनाडु राज्य शीर्ष पर है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के ७७वें चक्र के आँकड़े के अनुसार, प्रत्येक कृषक परिवार के ऊपर औसतन रुपये ७४,१०० का कृषि ऋण है, जिसमें समय के साथ लगातार वृद्धि हो रही है। आन्ध्र प्रदेश और तेलंगाना जैसे राज्यों में प्रत्येक १० में से ९ कृषक परिवार कर्ज के बोझ तले दबा हुआ है।''[४] के समय में खेती-किसानी में जितनी लागत है उसका आधा भी आय नहीं निकल पाता। कभी सूखा, कभी बाढ़ तो कभी ओला वृष्टि की वजह से फसल बर्बाद हो जाती है। किसान ऋण लेने के लिए मजबूर हो जाता है और वही ऋण उसकी आत्महत्या का कारण बन जाता है। और किसानों के लिए बनी नीतियाँ किसानों का ही गला घोट देती हैं।

दरअसल, हमने उस तरह का समाज बनाया ही नहीं जिस समाज में सबको जीने का अधिकार हो। स्वाधीनता के बाद से ही यदि इस ओर ध्यान दिया जाता, भूमिहीनों की भूमि सुधारों के माध्यम से जमीनें बाँटी जाती तो आज छोटे किसान से मजदूर बने अधिकांश ग्रामीण आत्महत्या करने को विवश नहीं होते। कहना न हागेा कि स्वाधीनता के बाद ग्राम-केन्द्रित और नगर-केन्द्रित लेखन कि जो बहस चली थी, उसके मूल में भी नगरों की श्रेष्ठता और सुविधासम्पन्न जीवन ही था। इसलिए गाँव पर लिखना धीरे-धीरे कम होता गया। गाँवों पर कहानियाँ या उपन्यास बहुत कम हैं। यही कारण है कि किसान आत्महत्याओं पर हिन्दी में बहुत कम लिख गया है। जिस महाराष्ट्र में सबसे अधिक किसान आत्महत्याएँ हो रही हैं, वहाँ भी कहानी उपन्यास कम ही हैं। सदानन्द देशमुख ने 'बारोमास' उपन्यास इसलिए लिखा कि वे आज भी गाँव में रहते हैं, गाँव के जीवन से उनकी निकटता ने ही किसानों कि भयावह आत्महत्याओं पर लिखने को प्रेरित किया। संजीव ने वर्धा में रहकर आसपास के गाँवों की लगातार यात्राएँ की, वे उन किसानों के घर भी गये, जिन किसानों ने आत्महत्या की थी। उन्होंने न केवल वर्धा का भूगोल समझा अपितु इस आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक चक्र को भी समझा। विदर्भ में अधिकतर खेती कपास, सोयाबीन और ईख की होती है। कपास को यहाँ सफेद सोना कहा जाता है यह एक ऐसी खेती है जो बेमौसम बरसात या सूखा से नष्ट हो जाती है। विदर्भ के किसान कपास की अधिक पैदावार के लिए अमेरिकी बीज 'बी०टी०' का उपयोग किया जो उनके लिए ही हानिकारक सिद्ध हुआ। इससे न केवल जमीन की उर्वरता कम हुई अपितु तमाम तरह की बीमारियों ने भी इस फसल को नुकसान पहुँचाया। जिस कीटनाशक दवाई का उपयोग फसल को बचाने में किया जाता है उसी को पीकर आत्महत्या कर रहे हैं। आत्महत्या के पीछे जो सबसे बड़ा कारण है, सरकारी नीतियाँ और सरकारी उपेक्षा। कर्जदार किसान का कोई साथी नहीं कोई संगठन नहीं।

'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास २०१८ में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में किसानों की

वर्तमान स्थिति की बहुत बारीकी से उजागर किया गया है। बलेसर के माध्यम से यह दिखाया गया है कि उसे अपनी खेती-बाड़ी से कितना लगाव है। उपन्यास के आरम्भ में बलहारी गाँव के सूखा-अकाल का चित्रण बहुत मार्मिक ढंग से किया गया है। इस गाँव में पानी के साधन के रूप में नहर ही एकमात्र सहारा था। बारिश न होने पर नहर द्वारा सिंचाई होती है। जिसमें कभी-कभी नहर को बीच में ही काट लिया जाता था, जिससे पानी आगे न जाने की वजह से लड़ाई-झगड़ा भी हो जाता है। ऐसे में सब का ध्यान नहर की ओर ही होता था। ''नहर के इस पानी की चोरी में ही उनके गाँव के सरभू सिंह' की हत्या हो चुकी थी। उस हत्या ने समूचे बलहारी को दहला दिया था उसकी याद में आज भी सिहर उठते हैं बलेसर।''[५] पानी की इस समस्या से न केवल फसल बर्बाद होती, अपितु किसनों को अपनी जान भी गवानी पड़ती है। धीरे-धीरे समय के साथ बदलाव आने लगता है, 'मोट' से 'रहट' फिर पम्पिंगसेट से बोरिंग तक आते-आते किसानों की उम्र निकल जाती है, लेकिन उन्हें सुख की अनुभूति नहीं होती है। आज नहरों की जगह ट्यूबेल ने ले लिया है। हल-बैल की जगह ट्रैक्टरों ने, महँगाई दिनों-दिन बढ़ती जा रही है, और पैदावार घटता जा रहा है। बीज बोने से लेकर कीटनाशक दवा, खाद्य, पानी, मजदूर, कटाई-मड़ाई आते-आते इतनी लागत लग जाती है कि उगाई हुई फसल बेचने पर लागत भी नहीं निकल पाता। यही सच्चाई है आज के किसानों की।

आज २१वीं सदी के समय में जिस तरह बाजारवाद, शहरीकरण बढ़ रहा है। लोग किसानी जीवन से मुँह मोड़ रहे हैं। किसान भी अपने लड़के-लड़कियों को पढ़ाना चाहता है। लेकिन आमदनी न होने के कारण वह विवश है। उसे कर्ज लेना पड़ता है। किस-किस चीज के लिए कर्ज ले, लड़के-लड़कियों की पढ़ाई, शादी-ब्याह या फसल के लिये। उसका जीवन तो बोझ हो जाता है। शिवमूर्ति के उपन्यास का पात्र पहलवान कहता है कि- 'सचमुच क्या है किसान की जिन्दगी का एक कोना ढकिये तो दूसरा कोना उधार हो जाता है।''[६] वर्तमान बदलते गाँवों की सूरत में यह तो कतई सम्भव नहीं है कि सिर्फ किसानी कर्म करके पूरे परिवार के सपनों को पूरा किया जा सके। ''एक ओर विकास कि आँधी में जहाँ शहर तेजी से बदल रहे हैं, सुख-सुविधाओं के केन्द्र बनते जा रहे हैं। वहीं गाँव के हम किसान आज भी प्रकृति पर ही आश्रित हैं। प्रकृति जिस वर्ष हम पर अनुकूल रहती है, उस वर्ष हम मजिगर खेती कर लेते हैं, अन्यथा लाख प्रया के बाद भी अच्छी फसल नहीं उपजा पाते। आप जानना चाहते हैं तो जान लीजिए बदलते समय में किसानों की स्थिति देश में सबसे अधिक चिन्तनीय है। हमारे देश की चौपट होती कृषि-व्यवस्था को लेकर पिछले दिनों एक समाचार-पत्र ने यह आँकड़ा प्रकाशित किया कि वर्ष १९९५ से २०१५ तक के बीच गिरते जलस्तर, बढ़ती महँगाई, सूखते कुएँ एवं तालाब तथा कीड़ों से फसलों के भारी नुकसान और क्षति को लेकर भारत

में २,९६,३४८ किसान आत्महत्या कर चुके हैं। इसमें महाराष्ट्र के किसानों की संख्या साठ हजार से ऊपर है।''[७]

इन्हीं सब कारणों से आज किसान, किसानी की अपेक्षा मजदूर बनना पसन्द करता है। बलेसर ३२ बीघे का कास्तकार है। वह दिन-रात मेहनत करता है फिर भी उसे खेती की आमदनी कम पड़ जाती है। वह चाहता है कि अपने बड़े बेटे को शहर भेज कर पढ़ा-लिखा दे, ताकि वह नौकरी करने लगे तब उस आमदनी से खेती करने में सहयोग मिलेगा। कुलराखन शहर में पढ़कर सचिवालय में नौकरी करने लगता है और अपने दोनों भाइयों को भी बुला लेता है वहीं पढ़ने के लिए। लेकिन बलेसर जो चाहते हैं कि उसके विपरीत होता है कुलराखन कहता है कि- ''खेती अब घाटे का सौदा हो गयी है पिता जी। खेती से जुड़े रहने में अब कोई लाभ नहीं। खेत में जितना श्रम, संघर्ष और खर्च है, इसकी तुलना में उपार्जन नगण्य, उल्टे खेती की परेशानियों से जीवन का सुख-चैन भी गायब, निरन्तर असुरक्षा और आतंक के माहौल में रहना। हमें समय रहते खेतों को बेचकर अपनी पूँजी शहर में स्थानान्तरित कर लेनी चाहिए। अभी खेतों के खरीददार हैं भी। समय जिस तेजी से बदल रहा है कि आगे के दिनों में खेती के खरीददार भी नहीं मिलेंगे।''[८] आज की युवा पीढ़ी खेती नहीं करना चाहती क्योंकि उसमें न सुख है और न ही अच्छी आमदनी। यहां पर दो पीढ़ियों की टकराहट दिखाई देती है। वह सम्पत्ति जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही। आज उसी को बेचने के लिए बेटे बोल रहे हैं। खेत किसान का सिफ खेत नहीं होता उसकी दुनिया होती है इनके सपने होते हैं। इतनी आसानी वह उसे कैसे बेच सकता है। बलेसर को अपने बेटे की यह खेत बेचने वाली बात अन्दर ही अन्दर खाये जा रही थी उसे उम्मीद नहीं थी कि बेटे को पढ़ाने-लिखाने के बाद यह नौबत आयेगी। वह अपनी माँ तथा दोनों भाइयों को भी शहर ले जाता है। पिता गाँव से शहर और शहर से गाँव का चक्कर लगाते-लगाते एक दिन अपनी बत्तीस बिगहवा में पछाड़ खाकर गिर गए, उनकी जीवनलीला समाप्त हो गयी। यही सच्चाई है किसानों की।

सहजानन्द ने अपने किसान आन्दोलन के लम्बे अनुभव के दौरान किसानों के मन में बैठे हुए भय और आतंक को नजदीक से बार-बार देखा था। इसलिए उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि किसानों की मानसिक कमजोरी को दूर करो, उनकी निहित शक्ति स्वयं जाग उठेगी, असल क्रान्ति तो किसानों और मजदूरों के, कमाने वालों के दिलों और दिमागों में ही होगी। उसे के बाद बाहरी क्रान्ति होगी और बहुत आसानी से हार्गे। अमीरों की तड़क-भड़क और उसका प्रचार किस तरह किसानों पर उनके रौब और दबदबे की छाप छोड़ता है, इसका अनुभव बताते हुए सहजानन्द लिखते हैं कि- ''हमने अनुभव किया है कि धनिकों और सत्ताधारियों कि तड़क-भड़क और साज-सामाजन को देख-दिखाकर ही उनका रोब किसानों पर जमाना

जाता है। लोग कहते हैं कि वे बड़े हैं, जबरदस्त हैं। देखिये न, उनका प्रभाव, उनका चेहरा, उनकी सकल-सूरत, उनके महल, उनकी मोटरें और दूसरे सामान। इससे गरीब और चिथड़े में लिपटा किसान सचमुच धोखे में पड़के डरने लगता है। वह उन्हें अच्छा, बड़ा और आदरणीय समज बैठता है।..... इसलिए किसानों के मन से भय को निकल फेंकने के लिए जरूरी है कि इन कुसंस्कारों का उन्मूलन यही पुराना दकियानूी सिलसिला सब खुराफातों की जड़ है। इसे बन्द ही कर देना होगा।''[६] भय के आतंक को दूर करने का कोई आसान तरीका आजमाने के बजाय सहजानन्द किसानों को ही निडर बनाने और उनकी पहल-कदमी को मुक्त करने पर जोर देते हैं, हमें तो किसानों में बल लाना है और वह तो उन्हीं के लड़ने और भिड़ने से ही होगा। किसानों का कृषि कर्म, उत्पादन संघर्ष ही उन्हें पग-पग पर संघर्ष और लड़ाई का पाठ पढ़ाता रहता है। बिना संघर्ष के जीवन चल ही नहीं सकता, शान्ति और प्रेम का उपदेश पिलाने वालों का भी नहीं। इसलिए किसानों की मुक्ति हाथ जोड़कर माँगने में नहीं, अपना हक लड़कर हासिल करने में है।

निष्कर्ष

उपन्यासकारों ने उपन्यास के माध्यम से उत्पादन की लागत और फसल की कीमत तथा औद्योगिक उत्पादों और सरकारी कर्मचारियों के वेतन की किसानों की आय में भारी फर्क की भी चर्चा करता है। किस तरह मेगासिटी के नाम पर नौकरी के वादे करके किसानों की जमीन हड़पी जाती है, इसका जिक्र भी करता है। कृषि क्षेत्र में कृषि संकट का मुख्य कारण व्यवस्थाएँ हैं, जिसमें सत्ता व्यवस्था और पूँजीवाद दोनों सम्मिलित हैं। क्विक लाभ, क्विक मनी, क्विक उत्पादन ये सब पूँजवादी संस्कृति है, जिसका जोर बढ़ रहा है, पर किसानों पर जो फाँस कस रहा है। यही सब कारण है, जो किसानों को आत्महत्या करने के लिए विवश करता है। सत्ता, श्रम, बल किसी भी उद्योग धन्धे की सफलता के लिए सबसे बड़ी जरूरत है। यही कारण है कि आज किसान खेती छोड़ शहरों की ओर विस्थापित हो रहे हैं। खेतिहर की अपेक्षा मजदूर बनना पसन्द करते हैं। किसानों की जरूरतें, उनके परिवार का पालन-पोषण सभी कुछ कृषि पर ही निर्भर रहता है, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई, शाद ब्याह, मूलभूत आवश्यकताएँ कृषि पर ही निर्भर है। सरकारी नीतियों की चर्चा सिर्फ अखबारों और नेताओं के भाषणों तक सीमित है, वास्तव में व्यावहारिक रूप में किसानों को इसका लाभ नहीं मिल पाता। सरकारी नीतियां बनाने वाले ए०सी० रूम में बैठकर नीतियों पर विचार-विमर्श करते हैं जिसके केन्द्र में किसान नहीं होता सत्ता व्यवस्था होती है। जरूरत है किसानों के लिए बनाई गयी नीतियाँ किसानों के हित और उन्हें केन्द्र में रखकर बनाई जाये। किसानों के बीच जाकर उनकी परिस्थितियों को समझकर, उनकी जरूरतें और आवश्यकताएँ क्या हैं? क्या हानि हैं? क्या लाभ है? घाटे,

मुनाफे आदि को ध्यान में रखकर नीतियों का निर्धारण किया जाये, जिसमें किसानों का हित हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. प्रेमचन्द, 'गोदान', सुमित्र प्रकाशन, संस्करण २०१६, पृ० १३२
२. संजीव, 'फाँस', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१६, पृ० १
३. संजीव, 'फाँस', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१६, पृ० १५
४. डाउन टू अर्थ, ११ सितम्बर, २०२१
५. कमलेश्वर, 'तेरा संगी कोई नहीं', लोकभारती प्रकाशन, २०१८, पृ० ६
६. शिवमूर्ति, 'आखिरी छलांग', नया ज्ञानोदय, ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, २०१८, पृ० ६०
७. कमलेश्वर, 'तेरा संगी कोई नहीं', पृ० ५८
८. कमलेश्वर, 'तेरा संगी कोई नहीं', पृ० १३
९. स्वामी सहजानन्द सरस्वती, 'किसान क्या करे', ग्रन्थ शिल्पी, २०११, पृ० १४

शोधार्थी (हिन्दी-विभाग)
शोध-निर्देशक- प्रो० सविता कुमारी श्रीवास्तव
हेमवती नन्दन बहुगुणा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
नैनी, प्रयागराज
मो० : ८३०३०३३५३०

प्रमुख ऐतिहासिक हिन्दी उपन्यासों में स्त्री : चिन्तन एवं चित्रण

–शुभम कुमार मौर्य

हिन्दी उपन्यास साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट रहा है। यह उपन्यास केवल अतीत की घटनाओं का वर्णन मात्र नहीं करते, बल्कि उस इतिहास को कल्पनाशीलता और साहित्यिक संवेदना के साथ प्रस्तुत करते हैं। इनमें तत्कालीन समाज की संरचना, सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ, राजनीतिक उथल-पुथल और सबसे बढ़कर स्त्री जीवन से संबंधित विविध पक्षों का गहन चित्रण प्राप्त होता है। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर २०वीं शताब्दी के मध्य तक का कालखण्ड भारतीय समाज के लिए अनेक स्तरों पर परिवर्तनकारी रहा। एक ओर अंग्रेज़ी शासन के प्रभाव में भारतीय सामाजिक ढाँचे में दरारें उत्पन्न हो रही थीं, तो दूसरी ओर स्वाधीनता आंदोलन के प्रभाव से राष्ट्रीय चेतना का उदय हो रहा था। इस संक्रमणकालीन वातावरण में हिन्दी के लेखकों ने इतिहास की ओर लौटकर उन कथाओं, प्रसंगों और चरित्रों को पुनर्जीवित किया, जो भारतीय सांस्कृतिक गौरव और आत्मबोध के प्रतीक थे। इसी क्रम में ऐतिहासिक उपन्यासों का विकास हुआ, जिनमें नारी चरित्र एक विशेष केंद्र के रूप में उभर कर सामने आया। साथ ही ऐतिहासिक उपन्यासों का केंद्र बिंदु व्यक्ति ही रहा- "इतिहासकार के लिए राष्ट्र मुख्य है, व्यक्ति गौण। उपन्यासकार के लिए व्यक्ति ही सब कुछ है।"[१]

ऐतिहासिक हिन्दी उपन्यासों में नारी केवल कथा के सौंदर्य या रोमांच का माध्यम नहीं रही, बल्कि वह सामाजिक-सांस्कृतिक विमर्श की संवाहक बनी। इन रचनाओं में नारी के विविध रूप जैसे- वीरांगना, प्रेमिका, पतिव्रता, विदुषी, परित्यक्ता, विरोधिनी आदि के माध्यम से उस युग की स्त्री के अस्तित्व, उसकी भावनाओं, संघर्षों और सीमाओं को उद्घाटित किया गया है। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों जैसे- वृंदावनलाल वर्मा, गंगाप्रसाद गुप्त, चतुरसेन शास्त्री, शरद पगारे, भगवती चरण वर्मा, यशपाल एवं राजेंद्रमोहन भटनागर आदि ने न केवल अतीत की घटनाओं का साहित्यिक पुनर्संरचना किया, बल्कि स्त्री चेतना को भी परंपरागत सीमाओं से बाहर लाकर उसे केंद्रीय विमर्श का विषय बनाया। इन लेखकों ने स्त्री को केवल सौंदर्य, प्रेम या दया की प्रतिमा के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे सक्रिय, संघर्षशील और

चिंतनशील रूप में प्रस्तुत किया। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'सुल्ताना रज़िया बेग़म' में रज़िया को एक प्रभावशाली शासिका के रूप में चित्रित कर स्त्री की राजनीतिक क्षमताओं को रेखांकित किया। गंगाप्रसाद गुप्त की 'नूरजहाँ' एक ऐसी नायिका को सामने लाती है, जो प्रेम, स्वाभिमान और सत्ता के बीच संतुलित भूमिका निभाती है। चतुरसेन शास्त्री ने 'वैशाली की नगरवधू' में आम्रपाली के माध्यम से स्त्री की आत्मबोध, स्वतंत्रता और विचारशीलता को उभारा है। वहीं वृंदावनलाल वर्मा की 'झाँसी की रानी' में लक्ष्मीबाई केवल वीरांगना नहीं, बल्कि मातृत्व, नारीत्व और राष्ट्रप्रेम की सजीव प्रतिमा बन जाती हैं। इन उपन्यासों में ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से स्त्री की अस्मिता, अधिकारबोध और आत्मनिर्णय को जो स्वर मिला है, वह हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श की दिशा में एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। स्त्री चिंतन के सम्बन्ध में क्षमा शर्मा लिखती हैं- "स्त्री विमर्श स्त्री अस्मिता के साथ ही उसमें चेतना का, अन्याय के विरोध का, अस्तित्व बोध और उसके अत्याचार के विरोध में खड़े रहने की लड़ाकू वृत्ति का न केवल परिचय देता है अपितु स्त्री चिंतन को बल प्रदान करता है।"[२]

किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'सुल्ताना रज़िया बेग़म वा रंगमहल में हलाहल' हिन्दी साहित्य का एक ऐसा ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें रज़िया सुल्ताना जैसी ऐतिहासिक स्त्री पात्र के माध्यम से नारी चेतना, सत्ता-संघर्ष और सामाजिक प्रतिरोध का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। यह उपन्यास मात्र इतिहास की पुनर्रचना नहीं करता, बल्कि उसमें नारी के भाव, विवेक, संकल्प और संघर्षशीलता को रचनात्मक संवेदना के साथ पिरोता है। वहीं, गंगाप्रसाद गुप्त हिन्दी के आरंभिक ऐतिहासिक उपन्यासकारों में एक प्रतिष्ठित नाम हैं, जिन्होंने इतिहास को केवल घटनाओं के क्रम में नहीं, बल्कि साहित्यिक संवेदना और सामाजिक दृष्टि के साथ प्रस्तुत किया। उनके उपन्यासों में स्त्री-चिंतन और स्त्री-चित्रण को विशेष महत्व प्राप्त है। उन्होंने स्त्री पात्रों को मात्र कथा के सौंदर्यबोध की वस्तु नहीं बनाया, बल्कि उन्हें सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश में एक जागरूक, सक्रिय और निर्णायक इकाई के रूप में चित्रित किया।

हिन्दी साहित्य में भगवतीचरण वर्मा एक प्रतिष्ठित उपन्यासकार हैं, जिन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, और ऐतिहासिक विषयों पर गहन विचार करते हुए अनेक कालजयी कृतियाँ प्रस्तुत कीं। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में जहाँ ऐतिहासिक यथार्थ का चित्रण मिलता है, वहीं स्त्री पात्रों के माध्यम से वे तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति, उसकी मानसिकता, स्वतंत्रता की आकांक्षा और यौनिकता जैसे विषयों पर गंभीर विमर्श भी प्रस्तुत करते हैं। उनके उपन्यासों में स्त्री केवल पृष्ठभूमि की शोभा नहीं, अपितु एक सक्रिय, विचारशील और संघर्षशील इकाई के रूप में उभरती है। विशेषतः उनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'चित्रलेखा', 'पतन', और

'चाणक्य' में स्त्री चिंतन के विविध पक्षों का विवेचन मिलता है। 'चित्रलेखा' भगवतीचरण वर्मा का सर्वाधिक चर्चित उपन्यास है, जिसमें उन्होंने स्त्री की यौनिकता, आत्मनिर्णय और समाज की नैतिकता की सीमाओं को चुनौती दी है। इस उपन्यास की नायिका चित्रलेखा एक राजनर्तकी है, जिसे परंपरागत दृष्टिकोण से 'पतन की प्रतीक' माना जा सकता है। परन्तु वर्मा ने उसे केवल एक उपभोग की वस्तु नहीं बल्कि एक स्वाभिमानी, संवेदनशील, और निर्णय लेने में सक्षम स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया है। चित्रलेखा का यह कथन उल्लेखनीय है-

"गुरुदेव, पुरुष दो विवाह कर सकता है, और वह दो पत्नियों से प्रेम कर सकता है; फिर स्त्री ऐसा क्यों नहीं कर सकती? स्त्री अपने पति से उतना ही प्रेम कर सकती है, जितना अपने पुत्र से। आत्मिक सम्बन्ध कई व्यक्तियों से एक साथ संभव है।"[३]

यह विचार न केवल स्त्री के व्यक्तिगत निर्णयों की स्वायत्तता को उजागर करता है, बल्कि उस पर समाज द्वारा थोपी गई नैतिकता पर भी प्रश्नचिन्ह लगाता है। चित्रलेखा के माध्यम से लेखक स्त्री की आकांक्षाओं, उसकी स्वाभाविक इच्छाओं को दमन के बजाय स्वीकार्यता देने का आग्रह करता है।

चतुरसेन शास्त्री का उपन्यास 'वैशाली की नगरवधू' हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कृति है, जिसमें स्त्री अस्मिता, चेतना और सामाजिक व्यवस्था में स्त्री की स्थिति का गहन चित्रण मिलता है। यह कृति प्राचीन वैशाली गणराज्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है, परंतु इसका केंद्रीय केंद्रबिंदु अम्बपाली का जीवन है। वह स्त्री जिसे समाज 'नगरवधू' का दर्जा देता है, लेकिन जो अपनी करुणा, आत्मबल और विचारशीलता के बल पर उसी समाज के सामने एक आईना बनकर खड़ी हो जाती है। अम्बपाली न केवल इस उपन्यास की प्रमुख नायिका है, बल्कि वह स्त्री विमर्श की दृष्टि से एक सशक्त प्रतीक भी बनती है, जिसमें सौंदर्य, कलात्मकता, विवेक, स्वाधीनता और विद्रोही चेतना का अद्‌भुत संगम दिखाई देता है।

उपन्यास 'वैशाली की नगरवधू' में अम्बपाली का चरित्र प्रारंभ में एक अत्यंत सुंदर, आकर्षक और कला-कुशल स्त्री के रूप में सामने आता है, जिसे उसकी अद्वितीय प्रतिभा के कारण नगरवधू घोषित किया जाता है। यह निर्णय उस समाज द्वारा लिया गया है, जो स्त्री की कला और सौंदर्य को सम्मान की आड़ में सार्वजनिक उपभोग की वस्तु में बदल देना चाहता है। नगरवधू बनने की परंपरा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को दर्शाती है, जहाँ स्त्री को गौरव का प्रतीक तो कहा जाता है, लेकिन साथ ही उसे निजी जीवन, परिवार और मातृत्व जैसे मूल अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है।

चतुरसेन शास्त्री ने इस परंपरा को केवल ऐतिहासिक घटना के रूप में नहीं दिखाया, बल्कि इसके भीतर छिपे स्त्री शोषण, मानसिक पीड़ा और पितृसत्तात्मक सोच की तीखी आलोचना की है। अम्बपाली की पीड़ा किसी एक स्त्री की व्यक्तिगत व्यथा नहीं, बल्कि उस संवेदनशील और आत्मचेतन स्त्री की पीड़ा है जो समाज की दी गई सीमाओं को पार करना चाहती है, किंतु हर बार उसे परंपराओं की दीवारों से टकराना पड़ता है। वह प्रेम करती है, त्याग करती है, समर्पण भी करती है, परंतु समाज पहले ही उसे एक तय भूमिका में बाँध चुका होता है। इसलिए उसे कभी वह मान-सम्मान नहीं मिल पाता जिसकी वह वास्तव में अधिकारी है। अम्बपाली की यह त्रासदी केवल उसका निजी दुर्भाग्य नहीं, बल्कि समूचे स्त्री समाज की नियति का प्रतीक है, जिसे पुरुष सत्ता ने अपने बनाए नियमों के अधीन परिभाषित किया है। अम्बपाली को जब नगरवधू बनने पर विवश किया जाता है तब उसकी पीड़ा उसके इस कथन में दिखाई पड़ती है- "जहाँ स्त्री की स्वाधीनता पर हस्तक्षेप हो, उस जनपद को जितनी जल्दी लोहू में डुबोया जाए, उतना ही अच्छा है।"[४]

वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास 'झाँसी की रानी' हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य में एक ऐसी विशिष्ट कृति है, जिसने स्त्री को पारंपरिक इतिहास की परिधि से निकालकर केंद्रीय भूमिका में प्रतिष्ठित किया। यह रचना केवल रानी लक्ष्मीबाई की वीरगाथा तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें स्त्री चेतना, उसकी अस्मिता और सामाजिक दृष्टिकोण का एक सांस्कृतिक पुनर्पाठ भी प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने रानी के जीवन के माध्यम से नारी में निहित नेतृत्व क्षमता, रणनीतिक सूझ-बूझ, आत्मबल और मातृत्व के जटिल लेकिन प्रेरणादायी स्वरूप को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से उजागर किया है। उसकी संरक्षिका, जागरूक माता और समर्पित देशभक्त भी है। लेखक ने उन्हें एक आदर्शवादी नहीं, बल्कि एक यथार्थपरक, भावनात्मक और सशक्त स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया है, जो सामाजिक कर्तव्यों के साथ-साथ अपने निजी द्वंद्वों और भावनाओं से भी जूझती है। उनके त्याग, साहस और संघर्ष के माध्यम से तत्कालीन भारतीय स्त्री की व्यापक और गहराई से जुड़ी छवि सामने आती है, जो नारी विमर्श की दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान है। झाँसी की रानी उपन्यास में रानी लक्ष्मीबाई के निर्भीकता का प्रमाण उनके इस कथन में स्पष्ट रुप से दिखाई पड़ता है, जब ब्रिटिश गवर्नर झाँसी को ब्रिटिश राज्य में मिला लेता है तब रानी लक्ष्मीबाई कहती हैं- "मैं अपनी झाँसी नहीं दूंगी। मैं केश मुंडन तभी कराऊंगी जब हिंदुस्तान को स्वराज्य मिल जायेगा।"[५] रानी लक्ष्मीबाई के अपने देश के प्रति समर्पण का भाव देखकर ब्रिटिश जनरल रोज यह कहने पर मजबूर हो जाता है- "यदि भारतीय स्त्रियाँ एक प्रतिशत भी ऐसी पागल हो जाए जैसी यह है तो हमको हिंदुस्तान अवश्य सब कुछ छोड़कर जाना पड़ेगा।"[६]

इस प्रकार 'झाँसी की रानी' उपन्यास मात्र एक ऐतिहासिक वृत्तांत नहीं, बल्कि एक गहन सांस्कृतिक पुनर्पाठ के रूप में भी सामने आता है, जहाँ स्त्री को इतिहास की दर्शक नहीं, बल्कि उसे गढ़ने वाली सक्रिय शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। वृन्दावनलाल वर्मा ने इस कृति के माध्यम से यह सशक्त संदेश दिया है कि यदि स्त्री में आत्मबल, दृढ़ संकल्प और विवेक का समुचित संगम हो, तो वह समाज ही नहीं, बल्कि पूरे राष्ट्र की दिशा और भविष्य को भी बदलने की सामर्थ्य रखती है। रानी लक्ष्मीबाई का चरित्र भारतीय नारी चेतना की उस उच्चतम प्रतीकात्मक छवि को प्रस्तुत करता है, जहाँ स्त्री केवल जननी या पोषिका नहीं, बल्कि जीवन और मृत्यु दोनों का धैर्यपूर्वक संचालन करने वाली महानायिका के रूप में प्रतिष्ठित होती है। वहीं वर्मा जी के अन्य ऐतिहासिक उपन्यास 'विराटा की पद्मिनी' में भी कुमुद एवं गोमती के माध्यम से स्त्री चिंतन का अद्भुत स्वरूप देखने को मिलता है। गोमती अपने मंगेतर देवी सिंह से पूछती है- "मैं क्या ढोर-गाय हूँ?"[७]

यशपाल का ऐतिहासिक उपन्यास दिव्या का आंतरिक सफर स्त्रीदृचिंतन की जटिलता को उजागर करता है। श्रेष्ठ कुल की पाबंदियों में पली यह नारी, जब अप्रत्याशित प्रेमवियोग और गर्भावस्था से जूझती है, तभी उसे एहसास होता है कि सामाजिक बंदिशें उसके हृदय के संघर्ष को कितनी घुटनभरी बना देती हैं। महल की सुरक्षा छोड़कर जब वह दास्य जीवन की चुनौतियों का हिस्सा बनती है, तब अपनी देह को अपराध नहीं, अनुभव का जरिया मानना सीखती है। देवी मल्लिका के आश्रम में नृत्य और कामुकता की अभिव्यक्तियाँ समझकर, वह जान लेती है कि स्त्रीत्व केवल देह नहीं, आत्मा की भाषा भी है। इस समझ के साथ वह यह अधिकार महसूस करती है कि शरीर और मन उसका स्वामित्व हैं, किसी अन्य की नहीं- "आचार्य, कुलवधू का सम्मान, कुलमाता का आदर और कुलमहादेवी का अधिकार आर्य पुरुष का प्रश्रय मात्र है। वह नारी का सम्मान नहीं, उसे भोग करने वाले पराक्रमी पुरुष का सम्मान है। आर्य, अपने स्वत्व का त्याग करके ही नारी वह सम्मान प्राप्त कर सकती है।"[८]

राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्षों के मैदान में दिव्या का आत्मविश्वास और भी मज़बूत होता जाता है। वह न केवल अपनी आवाज़ उठाती है, बल्कि सभी महिलाओं के स्वतंत्रता, सम्मान और न्याय की पुकार भी बुलंद करती है। यशपाल ने इस रूप में दिखाया है कि स्त्री-चिंतन कहीं बंद विचार नहीं रहता, बल्कि सामाजिक-राजनीतिक बदलाव का स्रोत बन सकता है।

राजेन्द्र मोहन भटनागर हिन्दी के समकालीन साहित्य में एक ऐसे उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिन्होंने ऐतिहासिक कथानकों के माध्यम से न केवल अतीत की घटनाओं और पात्रों को पुनर्जीवित किया, बल्कि स्त्री चिंतन और उसके सशक्त चित्रण को भी विशेष महत्व

दिया। उनके उपन्यासों में स्त्रियों की सामाजिक और दार्शनिक स्थितियों को अत्यंत सूक्ष्मता और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। उनकी प्रसिद्ध कृति 'मगरी मानगढ-गोविंद गिरी' में आदिवासी समाज के ऐतिहासिक संघर्ष को केंद्र में रखते हुए, स्त्रियों की भूमिका को केवल दर्शक या पार्श्व में रहने वाले पात्रों की तरह नहीं, बल्कि सक्रिय भागीदारों के रूप में चित्रित किया गया है। इन स्त्रियों में मातृत्व, बहनापा, और साथीपन के साथ-साथ नेतृत्व, साहस और निर्णायक दृष्टि का सम्मिलन दिखाई देता है।

भटनागर के अन्य ऐतिहासिक उपन्यास- 'नीले घोड़े का सवार', 'दिल्ली चलो', 'सरकार', 'गौरांग', 'योगी अरविंद', 'युगपुरुष अंबेडकर', 'न गोपी न राधा' आदि में भी स्त्री पात्र केवल सहायक भूमिकाओं में सीमित नहीं हैं, बल्कि वे अपने स्वतंत्र विचार, आत्मबल और सामाजिक सरोकारों के माध्यम से कथा की दिशा तय करती हैं। विशेष रूप से आदिवासी माँ जैसे चरित्रों में संघर्ष और न्याय के लिए जागरूक चेतना का सशक्त स्वर देखने को मिलता है। इस प्रकार, राजेन्द्रमोहन भटनागर की ऐतिहासिक उपन्यास धारा में स्त्री चिंतन और चित्रण केवल सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और आत्मसम्मान की चेतना का जीवंत उदाहरण बन जाता है। वे स्त्रियों को परंपरागत सीमाओं से बाहर निकालकर उन्हें इतिहास की सक्रिय निर्माता के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

'न गोपी न राधा' उपन्यास में राजेंद्र मोहन भटनागर ने मध्ययुगीन समाज में स्त्रियों को किन समस्याओं का सामना करना पड़ता था इसका बड़ा ही जीवंत चित्रण किया है- "ये गुण्डे किसने पैदा किए हैं? हमन ने ! हमन ने ! हमन ने अपनी मर्दाई खूँटी पर टाँग दीनी है। न भला, दस-पाँच गुण्डे और इतेक बड़ा सरग समाज! क्या उनकी गुंडई के हाथ-पाँव बाँधकर यमुना में नहीं बहा सकता है? जिस समाज में गुण्डे होते है वह समाज निखट्टूओ, नपुंसकों और कायरों का, असभ्य और अशिष्ट तथा हिजड़ों का होता है।"६

वहीं शरद पगारे ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से स्त्री की भूमिका को पारंपरिक सीमाओं तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हें इतिहास, समाज और संस्कृति के व्यापक परिप्रेक्ष्य में पुनः स्थापित किया है। उनके चर्चित उपन्यास 'पाटलीपुत्र की सम्राज्ञी' में सम्राट अशोक की माँ धर्मा का चरित्र इस दिशा में एक विलक्षण उदाहरण है। धर्मा को पगारे ने केवल एक माँ के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसी प्रबुद्ध और निर्णायक महिला के रूप में चित्रित किया है, जो अपने पुत्र और सम्राज्य के भविष्य को आकार देने में केंद्रीय भूमिका निभाती है। वह एक दूरदर्शी, राजनीतिक रूप से सचेत, और पितृसत्तात्मक व्यवस्था में भी अपने अस्तित्व को प्रभावशाली ढंग से दर्ज कराने वाली नारी है।

इसी प्रकार, 'गुलारा बेग़म' और 'जैनाबादी' जैसे उपन्यासों में उन्होंने मुग़ल इतिहास की

उन स्त्रियों को केंद्र में रखा है, जिन्हें इतिहास प्रायः उपेक्षित कर देता है। गुलारा बेग़म में शाहजहाँ की प्रेमिका को केवल सौंदर्य या प्रेम का प्रतीक न बनाकर एक आत्मनिर्भर, जटिल और निर्णायक स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वहीं जैनाबादी में औरंगज़ेब की प्रेमिका के माध्यम से प्रेम, धर्म, सत्ता और नारी इच्छाशक्ति के टकराव को अत्यंत बारीकी से उजागर किया गया है। इन रचनाओं में शरद पगारे की स्त्रियाँ सजावटी पात्र नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ का सामना करने वाली, निर्णय लेने वाली और आवश्यकता पड़ने पर परंपरा एवं सत्ता दोनों को चुनौती देने वाली व्यक्तित्व के रूप में सामने आती हैं।

शरद पगारे की विशेषता यह भी है कि वे इतिहास और कल्पना के बीच संतुलन बनाते हुए स्त्री के मनोवैज्ञानिक, वैचारिक और भावनात्मक पक्ष को प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत करते हैं। धर्मा की राजनीतिक चतुराई हो, या गुलारा और जैनाबादी की आत्मस्वीकृति और आंतरिक संघर्ष इन पात्रों में नारी स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और जागरूकता की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। इस दृष्टि से शरद पगारे के ऐतिहासिक उपन्यास केवल अतीत की पुनर्रचना नहीं, बल्कि स्त्री की ऐतिहासिक भूमिका को पुनर्परिभाषित करने का गंभीर साहित्यिक प्रयास हैं। उन्होंने स्त्री को इतिहास की परिधि से निकालकर उसे उस केंद्र में प्रतिष्ठित किया है जहाँ वह निर्णायक, सक्रिय और वैचारिक शक्ति के रूप में उपस्थित होती है। पगारे की रचनाएँ नारी विमर्श के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण साहित्यिक योगदान हैं, जो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री अस्मिता और चेतना को मुखर बनाती हैं। पगारे ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास बेगम जैनाबादी में स्त्री चिंतन का जो चित्रण किया है वह प्रशंसनीय है- "शबनम ने भी अपने को लाला की इच्छाओं के अनुरूप ढालने का प्रयत्न किया। साड़ी पहनने लगी। बिंदी लगाने और सिंदूर और माँग भरने लगी मंगलसूत्र और बिछिया पहनना अच्छा लगने लगा।"१०

स्पष्ट है कि हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने इतिहास के पुनर्पाठ के माध्यम से स्त्री की भूमिका को नई दृष्टि और गहराई प्रदान की है। इन लेखकों, जैसे- किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, चतुरसेन शास्त्री, वृंदावनलाल वर्मा, राजेन्द्रमोहन भटनागर, शरद पगारे आदि ने नारी पात्रों को केवल सौंदर्य, प्रेम या सहानुभूति की परंपरागत छवियों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हें सामाजिक, राजनीतिक, वैचारिक और सांस्कृतिक स्तर पर एक सक्रिय, निर्णायक और आत्मचेतस इकाई के रूप में चित्रित किया। उनके उपन्यासों में रज़िया सुल्ताना, नूरजहाँ, आम्रपाली, लक्ष्मीबाई, धर्मा, गुलारा बेग़म जैसी स्त्रियाँ न केवल ऐतिहासिक घटनाओं की साक्षी हैं, बल्कि वे अपने विवेक, संघर्षशीलता, नेतृत्व क्षमता और आत्मबल के माध्यम से इतिहास की दिशा को प्रभावित करने वाली शक्तियाँ भी बनती हैं। इन कृतियों में स्त्री अस्मिता, अधिकारबोध, आत्मनिर्णय और सामाजिक अवरोधों के प्रतिरोध की जो सशक्त अभिव्यक्ति

मिलती है, वह हिन्दी साहित्य के स्त्री विमर्श को ऐतिहासिक धरातल पर एक सशक्त आधार देती है। इस प्रकार हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास न केवल अतीत का पुनर्निर्माण करते हैं, बल्कि स्त्री के स्वतंत्र, विचारशील और निर्णायक स्वरूप को उजागर करते हुए समकालीन समाज को एक नई दृष्टि प्रदान करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. गुलाबराय, काव्य के रूप, आत्माराम एंड संस प्रकाशन, दिल्ली, १९५८, पृष्ठ १५९
२. क्षमा शर्मा, स्त्रीत्व विमर्श : समाज व साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २००२, पृष्ठ १६
३. भगवतीचरण वर्मा, चित्रलेखा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, इकतीसवाँ संस्करण २०२५, पृष्ठ १२० व १२१
४. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वैशाली की नगरवधू, प्रकाशनसंस्थान, प्रथमसंस्करण, २०२२, नई दिल्ली, पृष्ठ २८
५. वृन्दावनलाल वर्मा समग्र, सं. विश्वनाथप्रसाद सिंह, हिन्दी-प्रचारक संस्थान वाराणसी, तृतीय संस्करण, १९९४, पृष्ठ ८३०
६. वृन्दावनलाल वर्मा, झाँसी की रानी, मयूर प्रकाशन, झाँसी, १९५५, पृष्ठ २१४
७. वृन्दावनलाल वर्मा, विराटा की पद्मिनी, ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली, २०२१, पृष्ठ १०२
८. यशपाल, दिव्या, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१०, पृष्ठ १९२
९. राजेंद्रमोहन भटनागर, न गोपी न राधा, पृष्ठ १८०
१०. बेगम जैनाबादी, शरद पगारे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१५, पृष्ठ ८४

-शोधछात्र (हिन्दी-विभाग),
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मीराबाई के काव्य में लोक-चेतना

–डॉ० सोनम शुक्ला

हिन्दी काव्य-जगत में मीराबाई का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। मीराबाई ने लोकजीवन और लोक-संस्कृति को अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया। उनके गीतों में प्रेम, भक्ति और सामाजिक मान्यताओं की गहरी छाप दिखाई देती है, जो उन्हें लोकमानस की एक अद्वितीय कवयित्री बनाती है। मीरा भक्त कवि के रूप में भी जानी जाती हैं। उनकी व्याकुलता एवं वेदना उनकी कविता में निश्छल अभिव्यक्ति पाता है। मीरा के काव्य में रूप-रस और ध्वनि के प्रभावशाली चित्र मौजूद हैं। वे अपनी कविता में अंतर्भूत वेदना को पाठकों के अनुभव के आधार पर संप्रेषित करती हैं- 'घायल की गति घायल जाने और न जानै कोई' यही अभिप्राय है।

मीरा का सम्पूर्ण काव्य लोकजीवन के अन्तरंग स्पर्श से प्राणवान है। राजस्थानी लोकजीवन इसमें पुष्प गन्ध के समान सर्वत्र व्याप्त है। मीरा के पदों में छलकता लोक-भाषा का जल कबीर-कथित 'कूपजल' नहीं है; यह तो बहता नीर है, नित्य निर्मल और स्वच्छ ।

कवीन्द्र रवीन्द्र के शब्दों में ''भाषा जब तक जनसामान्य को भावों में बहा न ले जाय, तब तक गल्प और गान का आविर्भाव नहीं हो सकता।'' मीरा का काव्य एक ऐसे हृदय का सहज उद्‌गार है जो न तो सामाजिक बन्धनों को स्वीकार करता है और न ही धार्मिक मर्यादाओं को मानता है। वास्तव में मीरा का काव्य एक स्वछन्द प्रेमी की भावाभिव्यक्ति है। उस प्रियतम को रिझाने-मनाने और पाने की कोशिश ही वह सदैव करती रहती है। मीरा ने अपने समय के विचारों-रूढियों, अन्धविश्वासों और परम्पराओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया; फिर भी वह लोकजीवन में प्रचलित अनेक विश्वासों और तन्त्र-मन्त्रों, रूढ़ियों और लोक-रीतियों से प्रभावित दिखाई देती हैं। जैसे वह ज्योतिषियों द्वारा की गई भविष्यवाणी में विश्वास करती हैं। जब कोई विरहिणी अपने प्रियतम के विरह में तड़पती है तो उसे सम्पूर्ण संसार जड़-चेतन और यहां तक कि प्रकृति भी अपने दुःख में दुःखी दिखाई देती है। उस समय वह किसी भी उपाय से अपने प्रियतम को पाना चाहती है। अपनी विरह-अग्नि पर चन्दन का शीतल लेप लगाना चाहती है। ऐसे समय में वह ज्योतिषियों और पंडितों के पास भागती है। तंत्र-मन्त्रों का जाप भी करती है। अनेक देवी-देवताओं से मनौती भी मांगती है। यह सामान्य जनमानस के लिए जितना स्वभाविक है उतना मीरा के लिए भी। वह श्रीकृष्ण के विरह में प्यासी चातकी के

समान तड़पती हैं। उस समय ज्योतिषी की भविष्यवाणी (भगवान कृष्ण के आने के सम्बन्ध में) मीरा के कानों में स्वाति की बूंद के समान सुखद और प्राणों का आधार सिद्ध होती है-

'जोसीडा नै लाख बधाई, अब घर आया श्याम'। [२]

लोकमानस की एक प्रमुख विशेषता यह है कि अपनी मनवांछित एवं प्रिय लगने वाली बातों पर सहज विश्वास कर लेना। जब किसी का प्रियतम परदेश से नहीं लौटता तो उसके वियोग में व्यथित स्वजन अधीर होकर किसी ज्योतिषी के पास जाते हैं और उसके आगमन की सम्भावित तिथि पूछते हैं। मीरा भी प्रिय-मिलन हेतु इसी लोक-विश्वास से आशान्वित हुई किसी ज्योतिषी से पूछती हैं-

'कहो न जोशी प्यारा राम मिलण कद होसी। '

विरह और मिलन के इन उद्‌गारों में ज्योतिषियों के प्रति लोक-विश्वास ही व्यक्त हुआ है। यह विश्वास केवल मध्यकालीन ही नहीं है। आज भी विरह और मिलन के इन उद्‌गारों में ज्योतिषियों के प्रति लोक-विश्वास सामान्य जन-मानस में इसका प्रभाव कम नहीं हुआ है। यद्यपि आज का शिक्षित और पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगा हुआ व्यक्ति यह स्वीकार नहीं करता किन्तु अंदर से वह अशिक्षित अकृत्रिम और ग्रामीण व्यक्ति से कहीं अधिक दुर्बल, तनावग्रस्त और भयभीत है। अतः जो वह खुलेआम मानना नहीं चाहता उसे वह चुपके से करने का प्रयास करता है। आज भी सुख-दुःख, नशे के सभी क्षणों में हम पण्डितों और ज्योतिषियों के पास ही जाते हैं। फिर आज तो ज्योतिषशास्त्र को विज्ञान के अन्तर्गत स्थान भी दे दिया गया है। न केवल अशिक्षित या ग्रामीण ही बल्कि सुशिक्षित और सभ्य वर्ग भी इस विज्ञान से पूर्णतया प्रभावित है। केवल भारत या एशियाई देशों में ही नहीं अब तो इस विद्या का प्रचार पश्चिम में भी निरन्तर बढ़ता ही जाता है।

ज्योतिषियों के ही साथ-साथ तन्त्र-मन्त्रों पर भी मीरा ने विश्वास किया। वियोगिनी अपनी विरह-व्याधि से मुक्ति पाने के लिए इन्हीं तन्त्र-मन्त्रों का आश्रय लेती है-

'तन्त्र मन्त्र औषद कर तक पीर न जाई, कोउ उपकार करें, कठिन दर्द री भाई।'

मीरा का दर्द अकथनीय है। वह विरहाग्नि से पीड़ित किसी भी प्रकार की औषधि को लेने के लिए तैयार है परन्तु उसके असह्य रोग की औषधि भी तो साधारण वैद्य के पास नहीं है। एक स्थान पर वह कहती है-

'जन्तर लिखि ल्याओ, मन्तर लिखि ल्याओ
औषधि ल्याओ घसि के री।'

तन्त्र-मन्त्र के अतिरिक्त मीरा केवल वैद्य जी की औषधि पर ही विश्वास नहीं करती बल्कि अपने असाध्य रोग के लिए वह जड़ी-बूटी तक लगाने से इन्कार नहीं करती-

'नैन भर लावै।
कहा करूं कित जाऊं मोर सजनी, वैदन कूण बुतावै।
विरह नागन मोरी काया डसी है,
लहर लहर जिव जावे। जड़ी घसि लावं।'

लोक-जीवन में शकुनों पर भी बहुत विश्वास किया जाता है जिनमें कुछ इस प्रकार हैं- अंग फड़कना, पक्षियों को देखना और उनका उड़ना, पशुओं के रोने और बोलने की आवाज सुनना इत्यादि। मीरा के काव्य में भी कुछ शकुनों का उल्लेख मिलता है। जैसे वह अपनी बाई आंख के फड़कने पर हर्ष से फूली नहीं समातीं-

'कद आसी गोपियां वालो कान्ह फरखै बाई आंखड़ी।'

लोक-जीवन में उत्सव और पर्वों का अत्याधिक महत्त्व है। यूं तो पर्व सभी वर्गों में मनाए जाते हैं लेकिन लोक-वर्ग में जिस अकृत्रिमता और स्वाभाविकता से पर्वों पर हर्ष उल्लास का वातावरण रहता है; वह अद्वितीय है। राजस्थान के जनजीवन में तीज, होली, गणगौर, बसन्त पंचमी और सावन इत्यादि त्योहारों का अपना विशेष महत्व है। मीरा के काव्य में इन्हीं त्यौहारों का वर्णन मिलता है-

रै सांवलिया म्हारे आज रंगीली गणगौर, छै जी।
काली पीली बदली में बिजली चमके, मेघ घटा घनघोर छै जी।

तीज जैसे त्योहार को भी मीरा ने भुलाया नहीं। यह त्योहार संयोग और वियोग के उद्दीपन विभाव के रूप में प्रयुक्त हुए हैं-

'सावण में छड़ लागियो सखि तीजां खेलें हो।'

लोक-जीवन से सम्बन्धित तीज-त्योहारों के साथ-साथ मीरा के काव्य में तत्कालीन समाज में प्रचलित आभूषणों का वर्णन भी मिल जाता है। राजकुल की वधु होने के कारण राजसी वस्त्राभूषण का वर्णन तो स्वाभाविक है ही, साथ ही उस समय के प्रचलित सौभाग्य-चिह्न इत्यादि का वर्णन भी किया गया है। राधा और कृष्ण के वस्त्राभूषणों का वर्णन करते हुए मीरा कहती हैं-

'कुसुमल पाग के सरिया जामा, ऊपर फूल हजारी।
मुकुट ऊपर छत्र बिराजे, कुण्डल की छवि न्यारी।'

मीरा ने राजस्थान के विभिन्न खाद्य पदार्थों का भी उल्लेख किया है। 'लापसी' और छप्पन भोगों का उल्लेख भी मिल जाता है। कलापक्ष की दृष्टि से भी मीरा के काव्य में लोक-तत्व का समावेश हुआ है। मीरा राजस्थान और मेवाड़ की रहने वाली थीं। वहां से वह कृष्ण की जन्मभूमि तथा कर्मभूमि क्रमशः ब्रज और द्वारिका चली गयीं। अतः उनकी भाषा में

राजस्थानी के साथ-साथ ब्रज और गुजराती के शब्दों का प्रयोग भी मिल जाता है। वास्तव में मीरा-काव्य तो उस कल-कल निनादिनी मन्दाकिनी की मधुर धारा के समान है जो व्यक्तिनिष्ठ होकर भी लोक-जीवन के अनेक फूलों का स्पर्श करती हुई कृष्ण प्रेमरूपी महासागर में समा जाती है।ष्ष भाषिक प्रयोग के इसी क्रम में मीरा ने अपने काव्य में तत्कालीन भाषा में प्रचलित लोकोक्तियां और मुहावरों को भी स्थान दिया है। जैसे-

'अंग भभूत गले मृगछाला, तू जन गुण्डियां खोल।
सोती को सुपणां आवया जी, सुपर्णा बिस्वा बीस।
आप तो जाय विदेसा छाये, हमको पड़ गयो झोल।'[१२]

मीरा-काव्य में इसी लोक-तत्व के समाहार के कारण परवर्ती सन्तों, भक्तों और गायकों ने अपने लोक-गीतों और लोक-नाटकों के रूप में उसे अपनाया और सर्वसाधारण जनसमूह तक पहुँचाने का प्रयास किया। वास्तव में मीरा का लौकिक दिव्य भक्ति-भाव और महत्त-साधना के कारण जन-साधारण की दृष्टि में इतना असाधारण है कि मीरा का जीवन-चरित्र ऐतिहासिक व्यक्तित्व से ऊपर उठकर पौराणिक चरित्रों की श्रेणी तक पहुंच गया। भारतीय जनजीवन में पौराणिक भक्तों के चरित्र की बड़ी विशद महिमा है। आज भी अनेक भक्तों के जीवन-चरित्र, नाटक-कम्पनियों या स्थानीय अभिनेताओं द्वारा लोकनाट्यों के रूपों में प्रचलित हैं। इस प्रयास में यद्यपि मीरा के पदों में कुछ परिवर्तन हो गए हैं परन्तु मीरा का चरित्र, उनका काव्य जनमानस पर सदा के लिए अंकित हो गया है। इस प्रकार हम देखते है कि दरद दीवानी मीरा का सम्पूर्ण काव्य लोकजीवन के अन्तरंग स्पर्श से प्राणवान है।

मीरा के पद हिंदी-साहित्य में अपनी अलग पहचान बनाते हैं। वे उनकी हृदय की गहराईयों से निकलें हैं। उनका दुःख-दर्द उनके काव्य में स्पष्ट झलकता है साथ ही मीरा-काव्य में सम्पूर्णता का भाव तथा सच्चा प्रेम भी दिखाई देता है। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति की जिससे उनका स्थान महान सन्तों में रखा जाता है। उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के लिए राजस्थानी, ब्रज तथा खड़ी बोली आदि का प्रयोग किया है जिससे उनकी सफल भावाभिव्यक्ति हुई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. मीराबाई की पदावली, संपा० डॉ० परशुराम चतुर्वेदी, समीक्षक एवं व्याख्याकार- डॉ० राज नागपाल, डॉ० माया अग्रवाल, अनीता प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-२००९, पृष्ठ-११६
२. वही, पृष्ठ-११८
३. वही, पृष्ठ-११९
४. वही, पृष्ठ-११९

५. वही, पृष्ठ-११६
६. वही, पृष्ठ-११६
७. वही, पृष्ठ-१२०
८. वही, पृष्ठ-१२१
९. वही, पृष्ठ-१२१
१०. वही, पृष्ठ-१२१
११. वही, पृष्ठ-१२२
१२. वही, पृष्ठ-१२३

-असिस्टेंट प्रोफ़ेसर-हिन्दी विभाग
मर्यादापुरुषोत्तम पी.जी. कॉलेज,
भुड़सुरी, रतनपुरा, मऊ (उ.प्र.)
ई.मेल : sonamshukla616@gamil-com
मो. ७९८२६५७१४९

मन्नू भण्डारी की कहानियों में नारी-जीवन का संघर्ष

–डॉ० अनीता वर्मा

मन्नू भण्डारी स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज में नारी-जीवन के संघर्ष की भरपूर समझ रखने वाली, संवेदनशील एवं सशक्त लेखिका है। उन्होंने अपनी कहानियों में ऐसी नारी पात्रों को प्रमुखता से उभारा है जो पुरानी परम्पराओं और नैतिक मान्यताओं का प्रतिकार करती हुइ नये प्रतिमान स्थापित करती है। लेखिका ने अपने नारी पात्रों को स्वतन्त्र, समर्थ और स्वावलम्बी रूप से कहानियों में प्रस्तुत किया है। स्वतन्त्रता पश्चात् महिला कथाकारों ने कहानियों को जीवन से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उन्होंने व्यक्ति के अकेलेपन, दुख, पीड़ा, संघर्ष आदि को कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। मन्नू भण्डारी ने संघर्ष के भाव को कई रूपों में व्यक्त किया है। जहाँ पात्र का स्वयं से ही संघर्ष है जो कि स्वयं की परिस्थितियों, परिवेश और वातावरण से ही संघर्ष करता दिखाई पड़ता है। ऐसे में यह संघर्ष अजनवीपन, संत्रास के रूप में स्त्री-पुरुष के शाश्वत सम्बन्ध में भी वर्णित हुआ है। लेखिका ने मध्यवर्गीय समाज में स्त्री जीवन के संघर्ष के मुख्य बिन्दुओं को प्रमुखता से उभारा है। मन्नू भण्डारी का विपुल कथा साहित्य स्त्री मुक्ति की आरम्भिक बौछार है। इनकी कहानियों में नारी जीवन के विविध पक्षों को यथार्थपरक ढंग से चित्रित किया गया है।

'यही सच है' कहानी में एक मध्यवर्गीय लड़की दीपा के प्रेम और लगाव के अन्तर्द्वन्द्व को भावनात्मक स्तर पर रूपायित किया गया है। दीपा का संघर्ष अपने वयःसन्धि के प्रेम और फिर परिपक्व मनःस्थिति में किये गये प्रेम को लेकर है। निशीथ और संजय के मध्य जब तक निशीथ दीपा के समथ नहीं आता है तभी तक संजय उसके मन मस्तिष्क पर हावी रहता है क्योंकि दीपा का मन निशीथ को याद करके ही घृणा से भर उठता है- ''फिर अठारह वर्ष की आयु में किया हुआ प्यार भी कोइ प्यार होता है भला! निरा बचपना होता है, महज पागलपन! उसमें आवेश रहता है पर स्थायित्व नहीं, गति रहती है पर गहराई नहीं। जिस वेग से वह आरम्भ होता है, जरा-सा झटका लगने पर उसी वेग से टूट भी जाता है।''[१] यही कारण है कि वह संजय को पाकर निशीथ को भूलने की कोशिश करती है। आज उसके प्यार का, कोमल भावनाओं का, भविष्य से जुड़ी योजनाओं का एक सहारा मात्र संजय ही है। उसके प्रेम को परिपक्वता मिल जाने से वह अधिक गहरा और स्थायी हो गया है। किन्तु निशीथ के समक्ष आते ही दीपा एक बार फिर द्वन्द्व में पड़ जाती है। इस द्वन्द्व में दीपा के कलकत्ता प्रवास का

प्रेम ही विजय प्राप्त करता हुआ दिखाई देता है। वह असह्य अपमानजनित पीड़ा, क्रोध, कटुता आदि सबकुछ भूलकर निशीथ के साथ गुजारे सुहाने पलों को ही मात्र याद करती है और मन ही मन यह सोचती है कि इतना कुछ हो जाने के बाद भी वह निशीथ से ही प्रेम करती है। निशीथ के साथ बिताये चार दिनों में वह पहले प्यार को ही सच्चा प्यार मान लेती है, संजय और अपने प्रेम को महज छलावा और भ्रम का नाम दे डालती है, लेकिन फिर निशीथ का पत्र मिलते ही संजय को सामने पाकर दीपा अन्ततः अपने मन की ऊहापोह से पूर्ण रूप से उबर जाती है- ''रजनीगंधा की महक धीरे-धीरे मेरे तन-मन पर छा जाती है। तभी मैं अपने भाल पर संजय के अधरों का स्पर्शे महसूस करती हूँ और मुझे लगता है, यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, वह सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था...।''[२] मन्नू भण्डारी द्वारा दीपा के संघर्ष को निरा वैयक्तिक तथा मानसिक स्तर पर वर्णित किया गया है। मन के सन्दर्भ में प्रेमचन्द द्वारा स्वयं 'निर्मला' उपन्यास में लिखा गया है- 'मन! तेरी गति कितनी विचित्र है, कितनी रहस्य से भरी हुइ है, कितनी दुर्बोध! तू कितनी जल्दी रंग बदलता है। इस कला में तू निपुर है। आतिशबाजी की चरखी को भी रंग बदलते कुछ देर लगी है, पर तुझे रंग बदलने में उसका लक्षांस भी नहीं लगता।''[३]

'अकेली' और 'मजबूरी' भरे-पूरे परिवार और समाज में अकेली पड़ गयी 'सोमा बुआ' और 'बूढ़ी अम्मा' के भावनात्मक संघर्ष की कहानियाँ हैं। सोमा बुआ अकेली हैं यही कारण है कि वे पूरे गाँव भर में आत्मीयता और अहमियत पाने के लिए भटकत रही है। पूरा गाँव उनको अपना लगता है किन्तु किस्मत ऐसी कि बुआ के स्नेह और उनकी अपेक्षाओं की कद्र करने वाला कोई नहीं होता है। मन दुख होने बुआ कहती हैं- ''इन्हें तो नाते-रिश्तेदारों से कुछ लेना-देना नहीं पर मुझे तो सबसे निभाना पड़ता है। मैं ही सबसे तोड़ताड़ कर बैठ जाऊँ तो कैसे चले? मैं तो इनसे कहती हूँ कि जब पल्ला पकड़ा है तो अन्त समय में भी साथ ही रखो, सो तो इनसे होता नहीं। सारा धरम-कर ये ही लूटेंगे, सारा जस ये ही बटोरेंगे और मैं अकेली पड़ी-पड़ी इनके नाम को रोया करूँ। उस पर से कहीं आऊँ-जाऊँ वह भी इनसे बर्दाश्त नहीं होता है।''[४] यहाँ पर अपने अकेलेपन से उबरने के लिए समाज में रमने को छटपटाती सोमा बुआ अन्तर्द्वन्द्व से जूझती हुई दिखाई पड़ती हैं। इसी प्रकार 'मजबूरी' दो पीढ़ियों के वैचारिक संघर्ष की कहानी है। बूढ़ी अम्मा अत्यधिक प्यार और चाह के बावजूद भी बेटू को अपने अकेलेपन की साथ नहीं बना पाती हैं। बहू रमा इस बार बेटू को अपने साथ बम्बई ले जाने के लिए आयी थी। बेटे की जिद्द और संस्कार देख बहू का मन परेाान हो उठता है। बेटू को ले जाने की बात सुनकर अम्मा के पैरों के नीचे से तो जैसे जमीन खिसक गयी हो। बहू रमा को लगता है कि अम्मा के लाड प्यार ने बेटू को बिगाड़ दिया है। इसी से वह बेटू

को अपने साथ ले जाने की ठान लेती है और आवेश में आकर अम्मा को कड़ी बात भी कह देत ीहैं। जिससे अम्मा अपने आप को सँभालते हुए कहती हैं- ''ले जा बहू, ले जा। मेरा बेटू फूले-फले पढ़-लिखकर लायक बने, इससे बढ़कर खुशी की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है? मेरा क्या है, मेरी चार दिन की जिन्दगी.... उसकी हँसी-खुशी के लिए मैं तेरे बच्चे की जिन्दगी नहीं बिगाडूँगी।''[५] यह कहानी भावना और वैचारिक संघर्ष से ओत-प्रोत है।

'नशा' कहानी की आनन्दी का संघर्ष अपने ही संस्कारों से है। उसका पति शराबी है जिसे आनन्दी को सुख का एक पल भी नहीं दिया, आनन्दी संस्कारबद्ध होने के कारण ही पत्नी धर्म का निर्वाह करती हुई उइे शराब पीने के भी पैसे देती है। वहीं दूसरी ओर पुत्र किशनू है जो कि पिता की स्थिति से वाकिफ हो बारह साल की उम्र में ही घर छोड़कर चला गया था। अब वह बड़ा हो गया है। वह अपनी प्रताड़ित माँ के लिए सुख के वे सभी यत्न करता है जिनके लिए वह आज तक तरसती रही है। इन सुख के क्षणों में भी परित्यक्ता पति के लिए आनन्दी जैसे पति के लिए कष्टों की अभ्यस्त हो चुकी है कि किशनू द्वारा दिया गया सुख भी अकेले नहीं भोग पा रही है। पुत्र से छिपाकर पड़ोसियों की कढ़ाई-सिलाइ से प्राप्त पैसे वह पति को भेज देती है। यदि देखा जाये तो यहाँ आनन्दी का संघर्ष जिसे वह छोड़ आयी थी और जिसे वह भोग रही थी इन दोनों के मध्य का है। 'नई नौकरी' कहानी की रमा पारिवारिक जिम्मेदारियों और अफसर पति की ऊँची ख्वाहिशों में अपने अस्तित्व, अपने सपने और छोटी-छोटी खुशियों को न चाहते हुए भी बलिदान कर देती है। इस तरह रमा को जिन्दगी के हर मोड़ पर समझौता करना पड़ता है जिससे उसकी स्वयं की पहचान धूमिल होती नजर आती है। लेखिका द्वारा रचित कहानी 'कमरे, कमरा और कमरे' में नीलू का अस्तित्व संवरता है फिर बिखर जाता है। एक बुद्धिजीवी प्राध्यापिका की चाह पति की चाह के नीचे होम हो जाती है। वह स्वयं घुटती रहती किन्तु पति के जीवन और कार्य की हिस्सेदारी स्वीकार कर लेती है। ऐसे में नीलू अपनी पहचान कायम करने का असफल प्रयास करती नजर आती है।

'स्त्री-सुबोधिन' एक ऐसी कामकाजी लड़की की कहानी है जो विवाहित बॉस शिंदे के प्रेम में पड़ जाती है, लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता है उसे अपने सपने टूटने और स्वयं को ठगा जाने का आभास होता है। तो वह सोचती है- ''प्रेम के इस खेल में वह एक सधे हुए खिलाड़ी की तरह खेला और मैं निहायत अनाड़ी की तरह।'' आठ साल तक चलने वाला प्रेम-प्रसंग महज एक खिलवाड़ था, जिसकी बाजी बड़ी होशियारी से शिन्दे ने बाँटी। भ्रमजाल के कटते ही नजर साफ हुई तो बाजी में बँटे पत्तों का यह नक्शा रह-रहकर मेरी आँखों में उभरने लगाः

तुरूप का इक्का यानी घर.... उसके पास
तुरूप का बादशाह यानी बच्चा.... उसके पास

तुरूप की बेगम यानी बीवी और
प्रेम करने के लिए प्रेमिका..... उसके पास
तुरूप का गुलाम यानी नौकर चाकर
गाड़ी-बंगला..... उसके पास।''[६]

इस सन्दर्भ में मन्नू भण्डारी का एक वक्तव्य है- ''रात-दिन आधुनिकता का दम्भ भरने वाले बड़े-बड़े भाषण फटकारने वाले, लेखों का अंबार लगा देने वाले इन तथाकथित आधुनिक पुरुषों की चमड़ी की बस एक परत उतारिये कि आप पायेंगे वही सामन्ती संस्कारों वाला पति जो स्त्री पर शासन करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है।''[७] मन्नू भण्डारी की अधिकतर कहानियाँ में यही सामाजिक विसंगतियाँ प्रतिबिम्बित होती है। जहाँ स्त्री को न चाहकर भी समझौता करने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

'त्रिशंकु' कहानी में माँ और बेटी के दृष्टिकोण से पीढ़ी अन्तराल को व्यक्त किया गया है। आधुनिकता की इस होड़ ने जीवन को इतना जटिल बना दिया कि हम अपने ही मनोभावों को सहजता से व्यक्त नहीं कर पाते हैं। यहाँ इसी को वयःसन्धि पर खड़ी बेटी और युवा आधुनिक माँ के माध्यम से स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। बेटी अपने घर के आधुनिक मुक्त परिवेश को हास्यापद और छद्म मानते हुए अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति समक्ष न कर स्वयं में ही करती हुई दिखाई देती है- ''..... पर ममी का बच्चा उस समय दूसरी ही घुटन का शिकार हो रहा था और वह यह कि जिस नाटक की हिरोइन उसे बनना था, उसकी हिरोइन ममी बन बैठी।''[८] ऐसे में माँ की आधुनिकता और परम्परा के मध्य अन्तन्द्वन्द्व में पड़ी बेटी तनु का संघर्ष आत्मालाम के स्तर पर अभिव्यंजित होता है।

'गीत का चुम्बन' आधुनिक लड़की कनिका के मौन और अव्यक्त प्रेम की कुण्ठा को दर्शाती कहानी है, जो आधुनिक और पुरानी परम्पराओं के मध्य झूलती दिखाई देती है। 'दीवार, बच्चे और बरसात' कहानी में अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व और अस्तित्व को बनाये रखने के लिए शिक्षित नारी का संघर्ष स्पष्ट है। 'कील और कसक' में ऐसी नारी का चित्रण किया गया है जो अपने पति से उपेक्षित होने के कारण कहीं और आकर्षित होती है, किन्तु पराये पुरुष से भी इच्छानुकूल बर्ताव से वंचित रह जाती है, जिस कारण वह हताश होकर आक्रोशित हो जाती है और एक वेदना भरी कसक उसके जीवन का अंग बन जाती है। 'घुटन' दो स्थितियों में जीवन व्यतीत करने वाली दो स्त्रियों के घुटने की कहानी है। 'एक बार और' में नारी कैसे टूटने और जुड़ने की प्रक्रिया से गुजरती है, इसका यथार्थ चित्रण 'बिन्नी' के द्वारा इस कहानी में द्रष्टव्य है।

मन्नू भण्डारी का लेखन स्त्री को उसके विविध सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक यथार्थ के

धरातल पर बड़ी ही स्पष्टता एवं निर्णयात्मक क्षमता के साथ प्रस्तुत करने में सक्षम दिखाई पड़ता है। उनकी कहानियों में ऐसे नारी चरित्रों का वर्णन हुआ है, जो पुरानी सामाजिक मान्यताओं एवं तथाकथित नैतिक मान्यताओं को ध्वस्त करते हुए पारम्परिक प्रतिमानों में भी बदलाव लाती है। लेखिका ने आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ ही पूँजीवादी संस्कृति से प्रभावित नारी को अपनी कहानियों में स्थान दिया है। नारी स्वावलम्बन ने दाम्पत्य जीवन के आदर्शों, भावनाओं से उसे मुक्त कर दिया है जो कि पहले की कहानियों में दाम्पत्य को सुस्थिर बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता था। आधुनिक नारी समाज में रहते हुए अनेकानेक संघर्षों से गुजरते हुए भी अपना अस्तित्व एवं अपनी पहचान निर्मित करने को आतुर है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. मन्नू भण्डारी, सं० २०१५, मन्नू भण्डारी की यादगारी कहानियाँ, यही सच है, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्रा०लि० प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० ७५
२. वही, पृ० ६४
३. हिरेमठ, डॉ० आशा बी०, प्र०सं० २०१४, अन्तिम दशक की प्रमुख हिन्दी लेखिकाओं की कहानी में अभिव्यंजित नारी-मनोविज्ञान, ज्योति प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ० ४७
४. मन्नू भण्डारी, सं० २०१५, मन्नू भण्डारी की यादगारी कहानियाँ, अकेली हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा०लि० प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० ६
५. मन्नू भण्डारी, २०१५, मन्नू भण्डारी की यादगारी कहानियाँ, मजबूरी, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा०लि० प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० ३
६. मन्नू भण्डारी, सं० २०१५, मन्नू भण्डारी की यादगारी कहानियाँ, स्त्री सुबोधिनी, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा०लि० प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० १५०
७. आजकल, जून २०१६, पृ० ६
८. मन्नू भण्डारी, सं० २०१५, मन्नू भण्डारी की यादगारी कहानियाँ, त्रिशंकु, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा०लि० प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० १५८

-असि० प्रोफेसर (हिन्दी-विभाग)
कन्या महाविद्यालय आर्य समाज
भूड़, बरेली
मो०: ८७५६१०६१७०

समकालीन हिन्दी कविता में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ

–अंजली कुमारी

समकालीन हिंदी कविता का प्रश्न साहित्य जगत में विभिन्न विद्वानों के बीच में एक यक्ष प्रश्न-सा बन गया है कि आखिर समकालीन किसे कहा जाए। समकालीन एक बहु आयामी शब्द है जो विभिन्न समस्याओं को समेटते हुए उन समस्याओं पर चिंतन एवं विश्लेषण करके समाज में मानवता प्रतिष्ठित करने का प्रयास है। समकालीन कविता का उद्‌भव सामाजिक जीवन के यथार्थ की जमीन पर हुआ है। यह कविता केवल मनोरंजन का साधन न होकर अपने युग की सामाजिकए सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक विषमताओं की जांच भी करती है। यह कविता समस्याओं का चित्रण ही नहीं करती अपितु उन समस्याओं के पीछे मूल कारणों की खोज करके उसे दूर करने का प्रयास भी करती है। समकालीनता पर विचार व्यक्ति हुए करते हुए आर्चाय नंदकिशोर कहते हैं- ''एक इंसान के रूप में मेरे लिए समकालीनता का अर्थ है अपने समय में एक मनुष्य की हैसियत से जिंदा रहने के आकांक्षा और उसके लिए किया गया संघर्ष, हम तभी समकालीन है जब हम अपने समय में मनुष्य बने रहने का संघर्ष करते हैं और मनुष्य बने रहने का अर्थ है अपनी स्वाधीनता को, अपनी सर्जनात्मकता को, अपने मूल्य बोध को, अपने मानवत्व को जिलाए रखना। जाहिर है कि यह संघर्ष कोई अपने समय से कतरा कर नहीं कर सकता। समय में बहुत कुछ है या हमारे अनुकूल है, बहुत कुछ ऐसा भी है जो भयंकर प्रतिकूल है। अनुकूल को पुष्ट करते हुए और प्रतिकूल से संघर्ष करते हुए मैं अपने मानवत्व का संर्वधन करते रहना चाहता हूं। यही मेरी समकालीनता है। जाहिर है कि समकालीनता समय से बंधी हुई नहीं है। यह अनिर्वायतया समय का अतिक्रमण करती है, क्योंकि यह एक इतिहास में अपने जडें रोपती है और एक भविष्य की आकांक्षा करती है, उसकी ओर उन्मुख होती और इस प्रकार अपने र्वतमान संघर्ष के क्षण में अतीत और भविष्य को लेती है। यह र्वतमान पर अतीत और भविष्य की छाया नहीं है, अतीत और भवितव्य का शुद्ध वर्तमान हो जाना है। यही मेरी समकालीनता है।''[१] एक कवि के लिए कविता समाज की आत्मा होती है, जब समाज विकट परिस्थितियों से संघर्ष कर रहा होता है तो उसकी पीडाएं, आकांक्षाएं, विडंबनाएं, विषमताएं कवि की कलम से कविता

का रूप धारण करती है। यह कविताएं समाज के विविध पक्षों जैसे नारी विमर्श, दलित विमर्श, बेरोजगारी, जातिगत शोषण, वर्गभेद, बेरोजगारी, नैतिक मूल्यों का क्षरण, राजनीतिक पतन आदि का यथार्थ चित्रण करती है। समकालीन कविता में न केवल यथार्थ चित्रण हुआ है अपितु समाज से प्रश्न भी किया है जो कवि की संवेदनशीलता को दर्शाती है।'' समकालीन कविता का मूल स्तर निराशावादी नहीं है, भाग्यवादी और ईश्वर वादी भी नहीं है, उसमें कहीं-कहीं आशा की आलोक किरणें मौजूद हैं क्योंकि उसे जन संघर्ष शक्ति का पूरा भरोसा है। समकालीन कविता सामने होकर गुजरती हुई स्थितियों का आंखों देखा हाल है वह भोगते, तडपते, कसमसाते आदमी की हू-ब-हू तस्वीर है जिसकी शक्ल से हम अच्छी तरह वाकिफ है या स्वयं उसी स्थिति में ढले हुए हैं। आज समकालीनता वस्तुतः स्थितियों, व्यक्तियों और शक्तियों के क्रूर विश्लेषण में ही है। सत्य दंभ, षडयंत्र, सनक और भोग-विलास के ऊपर जो लोग और तबके शांति, जनतंत्र, परिष्कृत प्रयोग, आधुनिकता अथवा अन्य मुखौटे लगाते हैं, उन्हें कठोर कचोटक स्वरों में आदमी की बोली में नोच फेंकना ही समकालीनता है।''[२] साहित्य के अन्य विधाओं की अपेक्षा सामाजिक घटनाओं का चित्रण कविता में अधिक होती है। कविता में विभिन्न विषयों से संबंधित कोई भी घटना हो वह सदैव समाज सापेक्ष होती है। जो कविता में मानव समाज की विसंगतियों, विद्रूपताओं, संवेदनाओं आदि का वर्णन यथार्थ से संबंधित न हो वह सही मायने में श्रेष्ठ कविता नहीं हो सकती। समकालीन कविता अपने स्वरूप और प्रभाव को विस्तृत करते हुए आम जनमानस में स्थान निंधारित करने के साथ जनमानस के हृदय पर प्रभाव के साथ कवि का लेखन और चिंतन दोनों दृष्टियों से मानवीय अस्मिता को प्रतिष्ठित करते रहे हैं।'' समकालीन कविता में यथार्थ की दृष्टि भावी निर्माण की आधारशिला लगती है। सामाजिक जीवन में परस्पर विरोधी शक्तियां, किसी व्यवस्था विशेष से जुडे हुए सामाजिक तत्व, आर्थिक और सामाजिक उपलबधियां को किसी वर्ग विशेष की धरोहर बन कर रखने वाली षड्यंत्रकारी शक्तियां यथास्थिति के पक्ष में अपना दबाव बनाए रखती हैं। यह ताकतें सत्ता और व्यवस्था से जुडे रहकर पोषण प्राप्त करती रहती हैं। स्पष्ट है कि गतिशील समाज के विकास का चक्र समकालीन भारतीय जीवन और समकालीन हिंदी कविता की अंतर्वस्तु बनकर कविता के धरातल पर आकार लेता है। समकालीन जीवन का यथार्थ एक ऐसा तिलस्म है जिसके भीतर अनंत रहस्यमयी परते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन परतों का उद्घाटन विचार और तर्क के सहारे हैं। व्यवस्था का यह दुष्चक्र समकालीन कविता में अनेक सर्मथ कवियों के द्वारा उभारा गया है।''[३] समकालीन कविता के कवि अपने तद्युगीन समाज में व्याप्त समस्याओं का वर्णन करते हुए उससे उत्पन्न प्रश्नों का सामना कर एक नवीन रास्ते की खोज करती है। क्योंकि वह समाज की विषमताओं से मुक्ति

चाहता है और एक सुव्यवस्थित समाज की कल्पना का पक्ष लेता है। इस प्रक्रिया में कवि का स्वर व्यंग्यात्मक एवं विद्रोहात्मक हो जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी और भूमंडलीकरण के दौर में भारतीय समाज पर मंथन करें तो आज एक नया समाज उभरता हुआ दिखाई देता है। जिस समाज में पश्चिमी जीवन शैली, पश्चिमी आयातित विचार और पश्चिमी मूल्यों के प्रति आकर्षक होना स्वाभाविक-सा हो गया है, जबकि भारतीय प्राचीन समाज नैतिकता, समानता, परस्पर सौर्हाद, धार्मिक आचरण, मानव एवं सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर चालित हो रहा है। जबकि आधुनिक समाज में यह नवीन परिर्वतन मानवता का नहीं अपितु पूंजी और उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास अधिक नजर आता है। आज मनुष्य और समाज पर उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव दिखाई पड़ रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति वाले समय पर भारतीय समाज के संर्दभ में आर आर सुरेश लिखते हैं- सामाजिक मान्यताएं, नैतिकताएं, जीवन मूल्य, देश में विद्यमान मुख्य विचारधारा इन्हीं; मध्य आय वर्ग, जिन में टेक्नोक्रेटिक प्रोफेशनल इंटेलेक्चुअल र्वगद्ध के द्वारा तय की जाती है। यह सब करने के पीछे इनके अपने निहित स्वार्थ छुपे होते हैं और यह स्वार्थ कारपोरेट पूंजीवाद तथा भूमंडलीकरण की सम्पन्नता से बहुत करीब से जुडे होते हैं तथा उन पर निर्भर होते हैं। उपभोक्तावाद ने ऐसी चकाचौंध पैदा कर दी है कि वंचितों के प्रति सहानुभूति रखने वाला मध्य वर्ग तथा उसके प्रति न केवल उदासीन हो गया है, बल्कि खुले या छिपे ढंग से उस से शत्रुता का भाव भी रखने लगा है।"[४] आज देश के अधिकांश बुद्धिजीवी वर्ग राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता देते हुए इस मत से सहमत है कि भूमंडलीकरण और उपभोक्तावाद संस्कृति के युग में मानव कल्याण और विकास से कोई अर्थ नहीं है। यह मनुष्य के विकास के लिए न होकर केवल पूंजीपतियों के विकास की ही एक नीति है जो मानव विकास में सहायक न होकर केवल बाधक है। ''बदलते संदर्भों में मनुष्य के सबसे कम उद्घाटित या विलुप्त होते जीवन स्रोतों की खोज और भाषा में उनका संरक्षण शायद आज भी कविता की सबसे बडी ताकत है।"[५] समकालीन कविता की प्रासंगिकता को आम जनमानस तक पहुंचाने के लिए सोशल मीडिया के हस्तक्षेप को नकारा नहीं जा सकता। सूचना प्रौद्योगिकी के दौर में इंस्टाग्राम, ब्लघ्ग लेखन, व्हाट्सएप, फेसबुक, आनलाइन, इंस्टाग्राम, आनलाइन पत्रकारिता जैसे माध्यमों ने समकालीन हिंदी कविता की ओर बढावा मिला है। जिससे कविता विशेष र्वग के हाथों से निकलकर आम जनमानस तक यथार्थ के अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन चुकी है। विजय कुमार लिखते हैं ''आठवें दशक के समाज में हम एक ओर यदि तंत्र की शक्ति को पहले से कविता कहीं ज्यादा पर्सनलाइज्ड, तदर्थ और दमनकारी होकर उत्पादक शक्तियों के संघर्ष को कुचलते हुए देखते हैं तो दूसरी और जन समूहों के भीतर से हो कुछ रचनात्मक शक्तियों को भी उभरते हुए पाए हैं।पहली बार देश की अलग-अलग हिस्सों में यह रचनात्मक और संघर्षशील अभिव्यक्तियां अपनी

चेतना और बर्ताव में स्थापित व्यवस्था के विभिन्न रूपाकारों को चुनौती देती हुई और मानवीय असमिता और जनतांत्रिक अधिकारों की मांग करती दिखाई पडती हैं। ये अभिव्यक्तियां शोषण शक्तियों के एक समग्र और काम चलताऊ बोध को लेकर सामने नहीं आई हैं, बल्कि शोषण व्यवस्था के विभिन्न स्तरों, रूपों और कार्य प्रणाली की भी पहचान करती नजर आती है।''[६]

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पूंजीवाद का वर्चस्व मानवीय संबंधों, नैतिक मूल्यों, संवेदनाओं और मनुष्य के जीवन मूल्यों पर भी प्रभाव पडता दिखाई दे रहा है। यह विश्लेषण करना एक जटिल कार्य है कि उपभोक्तावादी संस्कृति के अंर्तगत कविता में मानवीय संबंधों और संवेदना की उपेक्षा हो रही है या उनकी प्रतिष्ठा, अधिकांश समकालीन कविताओं में मानवीय संबंधों के माध्यम से जीवन की छोटी सी छोटी घटनाओं के बहाने मानवीयता और संस्कृति के अस्तित्व की तलाश कविता में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जो भारतीय संस्कृति की असमिता की दिशा में एक सार्थक कदम है। मानवता से सरोकार रखता हुआ समकालीन कवियों की कविताओं में मानवीय संबंधों के नए आयाम देखने को मिलते हैं। आज की कविता में संवेदना को व्यापक दृष्टि प्रदान करते हुए 'वसुधैव कुटुंबकम' की परंपरा को पुनर्स्थापित करने की इच्छा केदारनाथ सिंह की कविता जो पृथ्वी के सभी निवासियों के नाम एक जरूरी चिट्ठी लिखना चाहते हैं लिखूंगा- एक न एक दिन जरूर लिखूंगा- वह एक जरूरी चिट्ठी जो मुझे लिखनी है 'पृथ्वी के सारे निवासियों के नाम' इतने दिन हो गए 'टालते टालते' पर लगता है ओर अधिक नहीं टाल पाऊंगा 'अभी कुछ दिन पहले तक' मेरे पास सब के पते थे, कुछ किताबों में खो गए 'कुछ सूचनाओं के आंधी में हो गए लापता' बाद में पता चला पते भी कई बार लापता हो जाते हैं।''[७] समकालीन हिंदी कविता अपने उत्तरदायित्व का समग्रता से निर्वहन करते हुए अपना संपूर्ण जीवन आम जनमानस को अपने अधिकारों के प्रति सचेत और सामाजिक यथार्थ का चित्रण करने में समर्पित कर दिया। नारी विमर्श, दलित विमर्श, शिक्षा का प्रसार, पर्यावरण प्रदूषण, बाल विवाह, दहेज प्रथाएं, जलवायु परिवर्तन, वैश्विक परिप्रेक्ष्य में अस्त्र-शस्त्र के भंडारण, धर्म के आधार पर होने वाले सांप्रदायिक दंगे आदि से उपजने वाली समस्याओं के प्रति आवाज उठाई है। इस से प्रतीत होता है कि समकालीन कवियों का दायित्व सर्मपण भाव से सामाजिकता की अनुपालना है। कवि हृदय में कविता उस समय अभिव्यक्त होती है, जब उन्हें आभास होता है कि आम जनमानस व्यवस्था की बेडियों में जकडा हुआ है उस समय कवि के अंदर का विद्रोह उसे विद्रोह करने के लिए लेखनी उठाता है। ''विद्रोह की चेतना अन्यायपूर्ण और आततायी स्थिति के सामने पडने पर लगती है। मनुष्य जब दासता की मनोवृत्ति से उबरने के लिए प्रयत्नशील होता है और समानता के मनोभूमि पर अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर संघर्षरत होता है, तभी विद्रोह की नींव पडती है। अधिकारों के प्रति

सजगता संघर्षशील प्रवृत्ति और मुक्ति कामना विद्रोह की आधारभूत विशेषताएं हैं। इस संघर्षशीलता और मुक्ति कामना को तंत्र की भयावह शक्ति से टकराना पडता है। और इस टकराहट के दौरान ही यातना जन्म लेती है जो विद्रोह को वैयक्तिक से सामूहिक बना देती है।''[८] वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी कविता में दृष्टि डाले तो प्रतीत होता है कि समकालीन कवियों ने मानव पीडा को गहरी संवेदना के साथ न केवल अनुभव किया, अपितु मानव जीवन के आंतरिक आक्रोश को अपनी कविता में अभिव्यक्त कर मानवता का परिचय दिया। ''अपने प्रारंभिक अवस्था से लेकर आज तक जितना परिर्वतन समाज में हुआ, उससे कहीं ज्यादा परिर्वतन कविता के स्वरूप में हुआ। स्वतंत्रता और समानता की जिस तरह की मांग समाज में बढी कविता में भी वह मांग उतनी ही तीव्रता के साथ बढी। कहना तो यह भी गलत न होगा कि समाज विकास के साथ.साथ कविता का भी विकास हुआ।''[९]

सभ्य समाज से संबंध रखने वाले कैसे विकास के नाम पर किसानों, मजदूरों, दलितों, महिलाओं, आदिवासियों का विकास के नाम पर शोषण करते हैं। आज का मानव समाज में व्याप्त विषमताओं और विवशताओं से भरा है जिसके लिए संघर्ष करना भी जोखिम भरे चुनौती से कम नहीं है। समकालीन कवि अधिक संवेदनशील होकर मानव जीवन की तमाम कटुताओं के प्रति गंभीरता से चिंतन करने वाला मानव अस्तित्व की रक्षा के लिए सक्रियता से क्रियाशील है। ''समकालीन कविता में संर्पूण विसंगतियों और र्वजनाओं के परिवेश में जीता हुआ कवि केवल अनास्था की ही डोर नहीं बांधता बलकि संघर्ष के प्रति आस्था के लोक में पहुंचकर सृजनात्मक जिंदगी के चित्र रचता भी है। अपने अस्तित्व के प्रति आस्था समकालीन कविता का हिमालयन सत्य है। जहां एक ओर अनास्था की जंजीरें पॉव खींचने को बेताब हैं, वहां आस्था की तलवारें विसंगतियों के बंधन काटने के लिए तत्पर है।''[१०] इस प्रकार सार रूप में कहा जा सकता है कि समकालीन कविता मानवता के विकास का पक्षधर है, जो खोखले आर्दश का विरोध करती है। समकालीन कविता में भले ही मानव व्यवहारिक जीवन में समुचित सम्मान प्राप्त न कर पाया होए लेकिन कविता में संघर्ष को एक जीवन मूल्यों के रूप में अंगीकार किया गया है। जो समाज में व्याप्त विविध समस्याओं के प्रति अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करती हुई धर्म, जाति, क्षेत्रवाद, संप्रदाय, नारी, दलित शोषण आदि से संबंधित समस्याओं को गंभीरता से अभिव्यक्त किया है। ''साहित्य के संर्दभ में समकालीनता का सीधा संबंध नए संर्दभों और नए भावबोध से जुडना है। नए संर्दभों से जुडे बिना लेखन तो हो सकता है लेकिन समकालीन प्रश्नों से जूझने की प्रवृत्ति दिखाई नहीं देगी तो उसे सृजन में जो भी उपस्थित होगा उसे समय की गतिविधियों से बचना ही कहा जाएगा।''[११]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. डॉ० चंद्रकांत सिंह, समकालीन हिंदी कविता का देशांतर, अनामिका पब्लिर्शस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २०२३, पृष्ठ १५-१६

२. प्रोफेसर र्शमिला सक्सेना, प्रधान संपादक, शोध श्री समकालीन विर्मश २०११, डॉ० अंजू गोयल, समकालीन कविता का समाज, दयालबाग, आगरा, पृष्ठ ३९

३. डॉ० ओमप्रकाश सिंह, समकालीन कविता और नवगीत का तुलनात्मक अध्ययन, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण २०१६, पृष्ठ ५०-५१

४. मनीषा झा, समय संस्कृति और समकालीन कविताए प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली संस्करण २०११, पृष्ठ ५४

५. कुंवर नारायण, आज और आज से पहल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ ८५

६. डॉ० अशोक कुमार, समकालीन हिंदी कविता सृजन और चिंतन, यश पबलिर्शस, दिल्ली, संस्करण २०१८, पृष्ठ १५

७. मनीषा झा, समय संस्कृति और समकालीन कविताए प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण २०११, पृष्ठ १५९

८. डॉ० अशोक कुमार, समकालीन हिंदी कविता सृजन और चिंतन, यश पब्लिर्शस, दिल्ली संस्करण २०१८, पृष्ठ १५

९. डॉ० अनिल पांडेय, समकालीन हिंदी कविता का यथार्थ, सुभांजलि प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण २०१६, पृष्ठ ६३

१०. डॉ० ओम प्रकाश सिंह, समकालीन कविता और नवगीत का तुलनात्मक अध्ययन, राका प्रकाशन, इलाहाबादए संस्करण २०१६, पृष्ठ ६६

११. ओम प्रकाश वाल्मीकि, मुख्य धारा और दलित साहित्य, सामयिक प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण २००९, पृष्ठ १६२

शोध छात्रा (हिंदी-विभाग)
केंद्रीय विश्वविद्यालय, हि०प्र०
धर्मशाला पिन-१७६२१५
मो० : ७०१८९३०३३९

मित्रों मरजानी' के स्त्री पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण

–अंकित कुमार मौर्य

हिन्दी कथा साहित्य में कृष्णा सोबती एक चर्चित रचनाकार रही हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री जीवन के विविध पक्षों का रेखांकन बड़े ही बेलाग लहजे में किया है। अपने इसी बेबाक लेखन और धारदार तेवर के कारण समय-समय पर वे विवादों से भी घिरी रहीं। सन् १९६७ ई० में आया उनका उपन्यास 'मित्रो मरजानी' भी अपने कथ्य और भाषा के कारण खासा चर्चा में रहा। एक स्त्री का अपनी देह की संतुष्टि को लेकर मुखर होना इस उपन्यास का आधार बिंदु है। इसी कारण यह उपन्यास चर्चित होने के साथ ही विवादित भी रहा। इसीलिए कृष्णा सोबती के साहित्य को सेक्स का जश्न तक संबोधित किया गया तो वहीं कुछ आलोचकों द्वारा मित्रो को अभूतपूर्व पात्र भी घोषित किया गया।

इस उपन्यास में कुल ९ स्त्री पात्र हैं। जिसमें मित्रो कथा नायिका है। मित्रो का पूरा नाम समित्रावन्ती है। वह विवाहित है और अपने पति सरदारीलाल से सेक्सुअली असंतुष्ट है। जिसे वह खुलकर स्वीकारती भी है और शिकायत भी करती है। ''जिठानी, तुम्हारे देवर-सा बगलोल कोई और दूजा न होगा। न दुःख-सुख, न प्रीति-प्यार, न जलन-प्यास... बस आए दिन धौल-धप्पा... लानत-मलामत !"[१]

संभवतः इस लड़ाई-झगड़े की एक वजह यौनिक असंतुष्टि भी है। पति से वह प्रेम नहीं करती हो ऐसा भी नहीं है। लेकिन उसे अपने पति में अपने लिए शारीरिक तड़प नहीं दिखती। इसीलिए वह असंतुष्ट है। उसके लिए पति का मतलब तन और मन से साथी होना है। वह सरदारी से भी शिकायत करते हुए कहती है कि-''महाराज जी, न थाली बाँटते हो...न नींद बाँटते हो, दिल के दुखड़े ही बाँट लो।"[२] लेकिन पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को पुरुष के दुखों में भागीदार बनने का भी कम ही मौका मिल पाता है। वह अपनी देह की प्यास को अपनी जेठानी से खुले शब्दों में बयाँ करती है। "मित्रो झिझकी-हिचकिचाई नहीं। पड़े-पड़े कहा-सात नदियों की तारू, तवे-सी काली मेरी माँ, और मैं गोरी चिट्टी उसकी कोख पड़ी। कहती है, इलाके के बड़भागी तहसीलदार की मुँहादरा है मित्रो। अब तुम्हीं बताओ, जिठानी, तुम-जैसा सत-बल कहाँ से पाऊँ-लाऊँ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता।... बहुत हुआ

हफ्ते-पखवारे... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास कि मछली-सी तड़पती हूँ!"[३] यह एक स्त्री की अपनी दैहिक असंतुष्टि के प्रति सजगता और मुखरता है। लेखिका के स्त्री पात्रों और उनकी मुखर जरूरतों के मंतव्य को उजागर करती हुई अर्चना वर्मा लिखती हैं- ''वस्तुतः कृष्णा सोबती के पात्रों का औरत होने का अहसास पुरुष या प्यार की जरूरत के अहसास से कहीं गहरी और जटिल चीज़ है। वह पुरुष के विरोध या सहयोग में खड़े होकर अपने औरत होने को प्रमाणित करने की जरूरत से आगे और परे है।"[४] एक मध्यमवर्गीय परिवार में किसी स्त्री का अपनी काम भावना की असंतुष्टि को लेकर बात करना आज भी सभ्य समाज में स्वीकार नहीं है। वही एक पुरुष इस असंतुष्टि को संतुष्टि में बदलने के लिए परस्त्री के पास जाने के लिए स्वतंत्र हैं। उपन्यास में ही बनवारीलाल अपनी दो-दो शादियों का ज़िक्र बड़ी शान से करता है। मित्रो की इसी मुखरता को ध्यान में रखते हुए शशिकला त्रिपाठी लिखती हैं कि ''किरदार मित्रो उपन्यास में ही हलचल पैदा नहीं करती वह हिन्दी-साहित्य की भी सतह को आन्दोलित करती है. उपन्यास में तन-मन का झंकार और बुद्धि, वाणी की पारस्परिकता इस तरह गुँथा गया है कि कभी पाठक रचनात्मक यथार्थ से अभिभूत होता है, कभी उसकी पेशानी पर बल पड़ता है तो कभी ठगा सा रह जाता है. मित्रो जैसी अलमस्त, अल्हड़, वाचाल, निडर और ईमानदार चरित्र साहित्य में अनन्य है. उसके सारे बात-व्यवहार और क्रियाकलाप में देह-उत्सव का उत्साह उमड़ता है. उसकी तरुणाई का एक ही मकसद है आनन्द जिसके आयोजन के लिए हमेशा वह फिक्रमंद रहती है।"[५] मित्रो की वाचालता और निडरता निम्न संदर्भों में देखी जा सकती है। जब उसकी सास धनवन्ती उसे सरदारी लाल के सामने आँखें नीची कर लेने को कहती है तो वह और ढिठाई से सिर ऊँचा कर लेती है। वहीं वह अपने जेठ बनवारीलाल के गुस्से का प्रतिकार बने बनाये सामाजिक बंधनों को तोड़कर करती है ''मँझली बहू नंगे सिर बैठी चारपाई पर हिन-हिन हँसती थी और बड़ा लड़का बनवारी छाती पर हाथ कसे खड़ा-खड़ा दाँत पीसता था।"[६] उसके लिए बड़ों से अनावश्यक पर्दा करना व्यर्थ है। वह इन ढकोसलों का मजाक उड़ाती हुई दिखती है। इस पर रणवीर रांग्रा लिखते हैं- ''कृष्णा सोबती की इन कृतियों में समाजिक और नैतिक विधि-निषेधों, बंधनों-सीमाओं के उनके धुर अन्त तक अन्वेषण की जो आतुरता है, वह सतही स्त्री-चेतनवादियों और लकीर के फकीरों को समान रूप से हतप्रभ कर देती है। उनकी मित्रो जब नारी-देह की जैविक माँग की मुखर अभिव्यक्ति लेकर आई तो जहाँ रुढ़िवादी तिलमिला उठे, वहाँ नारी-चेतना के किताबी ज्ञानी भी चकित रह गए।"[७] मित्रो एक स्वाभाविक सदेह पात्र है। जिसकी निर्मिति के कारणों पर भी लेखिका ने लिखा है। वह जिस परिवेश में पली बढ़ी है वह वैसी ही हो सकती थी जैसी वह है। स्वच्छंद और खिलंदड़े प्रवृत्ति की उन्मुक्त स्त्री। जिसमें

अपनी स्वाभाविक यौन इच्छाओं के प्रति कोई लुकाव-छिपाव नहीं है। शायद इसीलिए वह तमाम तनावों से घिरे होने के बावजूद सकारात्मक बनी रहती है। लेकिन यौन अतृप्ति का उसके पूरे व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ा है। वह हमेशा इन्हीं खयालों में खोई रहती है। उसके सारे क्रिया-व्यापार में यह कुंठा व्यंजित होती है। यह सब उसके सामान्य व्यवहार और बातों से भी झलकता है। जैसे कि इस प्रसंग में- ''चारपाई पर बैठे सरदारी को चौंकाने के लिए मित्रो ने पाँव से आहट की, बाँहों से छनकार किया, तो भी फिक्रों में डूबा सास का बेटा हिला-डुला नहीं तो मित्रो के जी ढेरो प्यार उमड़ आया। हथेली पर थाली टिका, पाँव चारपाई की बाँही पर रखा और आँखें नचाकर कहा-लो, महाराज, बन्दी हाजर ! चाहो तो मेरी यह चिकनी-चुपड़ी सौत निगल लो, न हो तो मुझे ही चबा लो!सरदारी ने अपनी कठोर आँखों से एक नज़र उठाई और लौटा ली। मित्रो शरारत से और मसकी। कानों के झुमके हिलाए। तब हाथ से निवाला तोड़ सज्जन के मुँह में डाला और चंचल आँखों घरवाले को तरेरकर कहा-मौला जी, मैं नहीं तो यह आग-सिंकी सौतिया ही सही !"[८] किसी भी बात में वह यौनाचार की बातों को लाकर अपने आप को भुलावा देना चाहती है। यौनिक असंतुष्टि के कारण ही उसके व्यक्तित्व में अतिरंजिता आ गई है। इसीलिए वह परिवार वालों के समझ से परे हो चुकी है। मित्रो की सास धनवन्ती उसके बारे में कहती है कि ''इस लड़की का पार किसी ने नहीं पाया। अच्छी हो तो अच्छों से अच्छी और बुरी हो तो बुरों से भी बुरी। रौ आए तो सखी हो अपना बचा-बचाया हाज़र कर दे, रौ आए तो ऐसी बेगैरती कि घरवाले पर थू-थू!"[९] इस कथन से मित्रो के चरित्र के विविध आयामों को समझा जा सकता है। वह गृहस्थी के जंजालों को नकारती हुई भी अपनी जेठानी सुहाग के बीमार पड़ने पर चौके में नज़र आती है। शायद इसीलिए उसमें असामान्यता के बजाय स्वाभाविकता और वास्तविकता अधिक है। रंजना मिश्रा मित्रो के बारे में लिखती हैं कि "मित्रो कोई विदुषी नहीं, ज़मीन और मिट्टी से जुड़ी एक साधारण औरत, जो अपनी ईमानदारी और सहजता की वजह से उस पूरे माहौल में अलग ही दिख पड़ती है और अपने परिवेश में एक ख़तरे की तरह देखी और महसूस की जाती है। वह अपने आस-पास बिखरे चमचमाते जीवन के प्रति भी उतनी ही आकर्षित है जितना वह अपने पति की कोमल सानिध्य के लिए तरसती है। अपनी मांसलता और देह को पूरी सहजता से जीने वाली नारी चरित्र इसके पहले हिन्दी साहित्य में नहीं दिखी थी।"[१०]

मित्रो को पुनर्जन्म, स्वर्ग नरक का कोई भय नहीं। उसे लगता है कि जो है आज है। उसे अभी तक संतान प्राप्ति नहीं हो पाई है। जिसका कारण वह अपने पति की शारीरिक अक्षमता को मानती है। उसमें मातृत्व की लालसा है। जिसके लिए वह किसी भी हद तक जाने को तैयार है। वह स्त्री जो कहती है कि ''जिन्द-जान का यह कैसा व्यापार ? अपने लड़के बीज डालें

तो पुण्य, दूजे डालें तो कुकर्म !"[११] यह समाज द्वारा किसी स्त्री के कोख में पलने वाले बच्चे के जायज और नाजायज ठहराने के नैतिक मानदंडों का नकार है। वह ऐसा करने का प्रयास भी करती है, लेकिन अंत में वह अपने कहे इसी कथन को भूलकर परिवार संस्था को वापस अपना लेती है। अंत में मित्रो के चरित्र की परिणति परिवार और अपने पति को अपना लेने में होती है जो उसके चारित्रिक गुणों के विपरीत दिखाई पड़ता है। जिस पर रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं कि "मित्रो की विडंबना यह है कि 'मैं तो चंद्र खिलौना लैहों' के तिरिया हठ को वह पालती जरूर है, लेकिन बाल-बुद्धि के कारण थाली के पानी में डोलते चांद के अक्स को अपना अभीष्ट समझ मुदित हो जाती है। वह अपनी सारी ताकत मां की बुरी नीयत को भांपने और उस से दो-दो हाथ करने में लगा देती है, तनिक रुक कर अपनी ही उस टिप्पणी पर विचार नहीं करती कि "जिंद जान का यह कैसा व्यापार? अपने लड़के बीज डालें तो पुण्य। दूजे डालें तो कुकर्म। "लेकिन फिर भी तमाम खामियों के बावजूद मित्रों को खारिज करना आसान नहीं। वह ध्यान ही नहीं खींचती, चेतना पर चुंबक की तरह चिपक भी जाती है।"[१२] हम कह सकते हैं कि मित्रो की यह विडंबना और अंतर्विरोध ही उसके चरित्र को स्वाभाविक मजबूती देते हैं और वह हिन्दी साहित्य की एक अभूतपूर्व पात्र बनकर उभरती है।

मित्रो की माँ बालो एक उन्मुक्त मिज़ाज की गणिका स्त्री है। उसके चरित्र में नैतिकता की घेरेबंदी नहीं है। वह अपनी बेटी से भी यौनिकता को लेकर इतनी खुली हुई है कि दोनों सखियाँ सी जान पड़ती हैं। ''बाँहें फैला मित्रो ने अल्हड़ अँगड़ाई ली और माँ को ऐसे निहारा जैसे कोई बचपन की सहेली हो और हँस-हँसकर कहा-अपने कबूतर-से दिल को किस कैद में रखोगी बीबो, यह तो नित नया चुग्गा माँगेगा !"[१३] वह अपने जवानी के दिनों में कई-कई पुरुषों के साथ संबंध में रही है, लेकिन पति का स्नेह-प्यार उसे नहीं मिला है। जिसके कारण उसे अपनी बेटी और दामाद को साथ बैठे देखकर ईर्ष्या सी होती है- ''जमाई से सटकर बैठी अपनी जाई को देख तन पर एक बार तो कोई सँपीली सरसराहट लहरा गई। एक नहीं, बालो ने सौ-सौ मर्द नचाए अपने इशारों पर, बस एक खसम का सुख न बदा था इस अभागी के भाग !"[१४] यहाँ देखा जा सकता है कि कृष्णा सोबती स्त्री अधिकारों के प्रति सचेत तो हैं पर उनमें घर की देहरी और परिवार संस्था के प्रति अस्वीकार बोध नहीं है। वह परिवार को बचाए बनाए रखकर स्त्री की स्वतंत्र सत्ता कायम रखना चाहती हैं। उपन्यास के अंत में बालो ने अपनी बढ़ती उम्र और अकेलेपन की काट के रूप में मित्रो को अपने धंधे में वापस लाने का जाल बिछाया। उसने मित्रो को सजा सँवारकर सरदारी लाल के पास भेजा कि वह उसे रिझाकर इतनी शराब पिला दे, कि वह होश खो बैठे। फ़िर वह उसे किसी परपुरुष के पास भेज देगी। इस तरह मित्रो फिर से उसके धंधे में लौट आएगी। लेकिन लेखिका ने इसका अंत अपनी तरह

से रचा है और मित्रो की वापसी अपने परिवार में करा दी है।

मित्रो की सास धनवन्ती एक घरेलू कामकाजी और पुराने मूल्यों को प्रश्रय देने वाली स्त्री है। उसे अपने बेटों और पति से अपार स्नेह है। वह पुरुष की सेवा टहल में ही अपना जीवन सार्थक मानती है। उपन्यास में वह अपने बीमार पति की सेवा में लीन दिखाई गई है। अपने मँझले बेटे और बहू में मारपीट होते देख वह बहू को ही समझाती है कि ''समित्रावन्ती, इसे जिद चढ़ी है तो तू ही आँख नीची कर ले। बेटी, मर्द मालिक का सामना हम बेचारियों को क्या सोहे ?''[१५] यह पितृसत्तात्मक मूल्यों से घिरी एक स्त्री की दूसरी स्त्री को सलाह है। उसे यही सिखाया गया है कि पुरुषों का सामना करना स्त्रियों को शोभा नहीं देता या वे कमतर हैं उन्हें अपने पति से दबकर ही रहना चाहिए। कभी-कभी तो ऐसी स्त्रियाँ अपने बेटों से भी दबकर रहना सीख लेती हैं। उनकी आज्ञाकारी बन जाती हैं। कभी-कभी धनवन्ती की भी स्थिति कुछ ऐसी ही बन पड़ती है। उसका बड़ा बेटा कहता है ''माँ, तुम बापू के पास आ बैठो। आज्ञाकारी बनी धनवन्ती तुरन्त ऐसे उठी कि माँ नहीं, बेटे की बेटी हो !''[१६] लेखिका यहाँ धनवन्ती के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाज में एक माँ के चित्रण द्वारा स्त्री की गुलाम मानसिकता का भी परिचय दे रही हैं। जो उसे पीढ़ी दर पीढ़ी संस्कारों में मिली है। धनवन्ती के लिए परिवार की सुख-शांति पहली प्राथमिकता है। पूरे उपन्यास में उसके इसी गुण को उभारा गया है। वह जरूरत पड़ने पर अपनी बहुओं को डाँटती भी है और लड़ती भी है तो बाद में स्वयं ही माफ़ी माँगकर बात ख़त्म भी कर देती है। ''बहूटियो, मेरे कहे-सुने की मुझे माफ़ी दो। मैं न जानती थी कि मैं इस घर की माँ नहीं... टहलन हूँ... टहलन !''[१७]

जनको मित्रो की ननद है, जोकि बड़े दिनों बाद अपने पीहर आती है और गोद में एक बालक भी है। उसके लिए संतान प्राप्ति जीवन की बड़ी उपलब्धि की तरह है। वह अपनी भाभियों से भी यही उम्मीद करती है। जनको के चरित्र में पारंपरिक बेटी और बहू के गुण हैं। उसमें ससुराल जाने के बाद अपने मायके की चीज़ों के प्रति मोह और अनुरक्ति है। ''बर्तन-भाँड़ों से भरे पीहर के पुराने चौके में बैठ जनको का मन हिरस से भर आया। जहाँ जन्मी-पली, वही घर अब पराया हो गया।''[१८] वहीं ससुराल की बातों और चीज़ों को वह बड़े चाव से अपने पीहरवालों के साथ साझा करती है। इस चरित्र को उपन्यास में बहुत विस्तार नहीं दिया गया है।

मित्रो की जेठानी और परिवार की बड़ी बहू सुहागवन्ती भी अपनी सास की तरह ही पारंपरिक सीधी-सादी स्त्री है। वह सामाजिक मानदंडों के अनुसार एक आदर्श बहू और पत्नी है। परिवार की सभी जिम्मेदारियों को खुद संभालती हुई एक आज्ञाकारी और संस्कारी बहू। और जरूरत पड़ने पर परिवार के सदस्यों के लिए अपनी प्रिय वस्तुओं को त्यागने के लिए

भी तैयार स्त्री। सुहाग के लिए रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं कि ''सुहागवंती भारतीय परिवारों में जिस स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है, वह मां और बांदी की तरह पति की देखभाल करने में ही इतनी रीत जाती है कि चिड़िया या इंसान बनकर अपने जिंदा होने की पुलक को महसूस ही नहीं कर पाती। सुहागवंती पातिव्रत्य के तेज से रचा गया एक आभासी चरित्र है जो मिथ्या महामंडनों और प्रवचनाओं को ही सांस के आरोह-अवरोह की तरह भीतर-बाहर कर जिंदा होने के एहसास से अपने को पुचकारता चलता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था को अपने सुख, स्वास्थ्य और सुविधाओं के लिए ऐसी ही जिंदा मशीनों की दरकार रहती है।"[१९]

सुहाग जब भी मित्रो को अपने पति या परिवार वालों से बेअदबी करती हुई देखती है, उसे समझाने लगती है- ''मित्रो बहन, काहे का झंझट-बखेड़ा है ? देवर जो कहता है, वह मान।"[२०] ''भगवान् के लिए वहाँ अवा-तवा न बकना, मँझली !... बड़े सयाने जो कहेंगे, सुन लेना !"[२१] उपन्यास में ही मित्रो अपनी सास से सुहाग के बारे में कहती है कि- ''वह तो ठहरी पिछले जन्म की तुम्हारी चेरी! कहोगी बैठ जा, तो बैठ जाएगी। कहोगी उठ खड़ी हो, तो उठ खड़ी होगी !"[२२] यह कथन सुहाग के व्यक्तित्व को बखूबी रेखांकित करता है। उसके व्यक्तित्व का यह गुण सिर्फ़ अपनी सास के प्रति ही नहीं उपन्यास के अन्य पात्रों के साथ भी है।परिवार की छोटी बहू और मित्रो की देवरानी फूलावन्ती ईर्ष्या और लालच से भरी एक झगड़ालू स्त्री है। उसमें न तो परिवार के प्रति कोई ज़िम्मेदारी का भाव है और न ही किसी के प्रति सम्मान। वह तो सीधी-सादी सुहाग से भी लड़ पड़ती है। खाना बनाना और घर के दूसरे कामकाज न करने पड़े इसलिए वह प्रतिदिन नये-नये बहाने ढूँढ़ा करती है। मित्रो को इस बात का अंदाजा है और वह इस पर व्यंग्य भी करती है। कहासुनी बढ़ते-बढ़ते कपड़े गहनों के ठीक-ठीक बँटवारा न होने तक पहुँच जाती है। और अंत में फूलावन्ती अलग हो जाने की बात करती है। ''फूलावन्ती माथे पर हाथ मार-मार रोने लगी-हम बेचारे किसी को नहीं सुहाते! इस घर हमारा कोई हिस्सा-हक नहीं तो हमारी छप्परी अलग कर दो! बन आएगी तो कमाकर रूखी-सूखी खा लेंगे। न होगा तो मसानों में जा सोएँगे।"[२३] वह अपने पति गुलजारी लाल को लेकर अपने मायके रहने का निश्चय करती है। वहाँ भी उसे लगता है कि उसके पति को उसके ससुराल वाले भड़का रहे हैं, जिसके कारण वह अपने पति से भी लड़ती-झगड़ती है।

फूलावन्ती में आभूषणप्रियता और धनलोलुपता कूट-कूटकर भरी है।

फूला के मायके पक्ष की स्त्रियों का भी ज़िक्र उपन्यास में आया है। हालाँकि उनके चरित्र के बारे में कोई स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता। लेखिका ने उपन्यास में उनके एक-दो गुणों को ही चित्रित किया है। जैसे कि फूला की माँ मायावन्ती अपनी बेटी से प्रेम करने वाली और लोकलाज से भय खाने वाली स्त्री है। फूला के मायके आ जाने पर वह उससे एक-एक बात

जान लेना चाहती है ताकि वह अपने नाते-रिश्तेदार और समाज के लोगों से निपट सके। ''मायावन्ती को सचमुच बेटी पर लाड़ हो आया, गले में चिन्ता-फिकर भर कहा-फूलाँ, कुछ सोचा है, री? नाते-रिश्ते, शरीक-भाई सौ बात करेंगे, सौ मीन-मेख निकालेंगे ! फूलाँ ने मतलब भाँप ढाढस दिया-भाबो, उसकी चिन्ता तो तब हो न जब ऊँची-नीची अपनी ओर से हुई हो। मायावन्ती ने मन-ही-मन पूरी बही लिखकर तैयार कर ली और घुड़ककर कहा-हैं री, उन नास-होनों ने तुझ पर जुल्मों के पहाड़ ढा दिए और तू छेकड़ ऊँच-नीच की ही बात करती है ?"[२४] इस तरह वह अपनी बेटी के भविष्य की चिंता किये बगैर अपनी बेटी की हाँ में हाँ मिलाती है। अपनी बेटी के ग़लत होने पर उसे डाँटती भी है तो जैसे फूल से मारा जाता हो। फूला की भाभियाँ सोमा और रानी अपने ननद और सास की रग-रग से वाक़िफ हैं। उन्हें पता है कि फूला और मायावन्ती ढोंग रचने में माहिर हैं। फ़िर भी वे भोली बनी रहती हैं। इसीलिए फूला की भाभियों को अपनी ननद से तनिक भी हमदर्दी नहीं है। वे दोनों फूला और मायावन्ती से हमदर्दी का दिखावा कर उनकी टोह लेने के प्रयास में रहती हैं। और मौका मिलने पर रस ले-लेकर अपनी ननद की टाँग भी खींचती हैं।

इस प्रकार 'मित्रो मरजानी' की प्रत्येक स्त्री स्वभाव-मिज़ाज में एक दूसरे से अलग होते हुए भी एक दूसरे की पूरक स्त्रियाँ हैं। अनुरंजनी लिखती हैं कि ''यह उपन्यास शास्त्रों के मुताबिक परिभाषित तीनों प्रकार की नायिकाओं का उदाहरण प्रस्तुत करता है। पहली, स्वकीया नायिका-सुहागवंती, जिसका नाम भी बहुत सटीक रखा गया है; आख़िर स्वकीया का संबंध सुहाग से ही तो माना गया है। दूसरी, परकीया नायिका-मित्रो और तीसरी गणिका नायिका-बालो, मित्रो की माँ। इन तीनों में अपनी यौनिकता अभिव्यक्त करती परकीया और गणिका आई है और स्वकीया पतिव्रता की तरह, जिसके व्यवहार/व्यक्तित्व में यौनिक-अभिव्यक्ति शामिल नहीं होती है; क्योंकि तुरंत उसे उस ढाँचे से अलग कर दिया जाएगा जिसका मतलब है समाज की नज़र में बुरी बनना।"[२५] मित्रो 'मरजानी' जैसा चरित्र बन पाई, क्योंकि लेखिका ने उसके समानांतर सुहागवन्ती, बालो, फूलवन्ती और धनवन्ती जैसे स्त्री चरित्र गढ़े हैं। इस बारे में मधुरेश लिखते हैं- ''कृष्णा सोबती की नायिकाओं में कुछ सामान्य से सूत्र भले ही खोजे जा सकें, लेकिन उनकी कोई भी दो नायिकाएं एक सी नहीं हैं।"[२६] यह बात केवल उनकी स्त्री पात्रों पर ही नहीं, बल्कि उनके प्रत्येक पात्र पर लागू होती है। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि चरित्र सृष्टि में कृष्णा सोबती ने अद्‌भुत कलाकारी हासिल की थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. सोबती, कृष्णा, मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ १८
२. वही, पृष्ठ ४८

३. वही, पृष्ठ २०
४. वर्मा, अर्चना, अस्तित्व का चौथा आयाम (लेख), कृष्णा सोबती : एक मूल्यांकन, सं॰ छबील कुमार मेहेर, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : २०१६, पृष्ठ ७९
५. त्रिपाठी, शशिकला, देह का स्त्रीवादी पाठ और मित्रो मरजानी https://streekaal.com/2016/05/15/criticism-mitromarjani/
६. सोबती, कृष्णा, मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ १६
७. रत्ती और मित्रो लेखक की मनोवैज्ञानिक कुंठाओं का परिणाम नहीं हैं : रणवीर रांग्रा से बातचीत, लेखक का जनतंत्र : कृष्णा सोबती से साक्षात्कार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करणः २०१८, पृष्ठ १५
८. सोबती, कृष्णा, मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्याः- ४६-४७
९. वही, पृष्ठ ७१-७२
१०. मिश्रा, रंजना, स्त्री की देहः 'मित्रो मरजानी' से 'पार्च्ड' तक का सफ़र https://medium.com/indiamag/B0-b78c84fd9e7c
११. सोबती, कृष्णा, मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ ६४
१२. अग्रवाल, रोहिणी, मित्रो मरजानी : कुछ खतरे, कुछ दुश्वारियां, https://fargudiya.blogspot.com/2019/05/blog-post_4.html?m=1
१३. सोबती, कृष्णा, मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्याः- ९०
१४. वही
१५. वही, पृष्ठ १२
१६. वही, पृष्ठ १४-१५
१७. वही, पृष्ठ २८
१८. वही, पृष्ठ ५२
१९. अग्रवाल, रोहिणी, मित्रो मरजानी : कुछ खतरे, कुछ दुश्वारियां https://fargudiya.blogspot.com/2019/05/blog-post_4.html?m=1
२०. सोबती, कृष्णा, मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ १७
२१. वही, पृष्ठ ३२
२२. वही, पृष्ठ ६४-६५
२३. वही, पृष्ठ ४५
२४. वही, पृष्ठ ६०
२५. अनुरंजनी, स्त्री सेक्सुअलिटी के पहलू, https://www.hindwi.org/bela/mitro-marjani-ke-bare-me

२६. मधुरेश, जीवन जीने की शऊर से लबरेज (लेख), कृष्णा सोबती : एक मूल्यांकन, सं० छबील कुमार मेहेर, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : २०१६, पृष्ठ ६३

-शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
मो०: ९६९५३६३७९३
ईमेलः-ankitkrmauryaaubhu@gmail.com

रामचरितमानस में स्त्री पीड़ा एवं संघर्ष

–डॉ० धर्मेन्द्र कुमार

'स्त्यायति अस्यां गर्भ इति स्त्री।[1] नारी को स्त्री इसलिए कहते हैं कि गर्भ में स्थिति (पिण्ड) उसके भीतर होती है। स्त्री शब्द की दूसरी व्युत्पत्ति वह है - शब्द रूप रसगन्धानाम गुणानां स्त्यांन स्त्री।[2] शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध इन सबका समुच्च्य स्त्री है। पतंजलि से पहले भी शब्द स्पर्श आदि का संघात स्त्री है इसकी परिकल्पना यास्क ने अपने भाव में व्यक्त किया है।[3] यहाँ पर सर्वप्रथम एक प्रश्न उठता है कि नारी को स्त्री और स्त्री को नारी क्यों कहा गया, तो यह प्रवृत्ति जब बाह्यवृत्ति होती है तो यह सब सम्भव होती है समत्व भाव में तो एक ही है क्योंकि पुरुष की भावनाओं को पावन बनाए रखने के लिए माता, बहन, पुत्री और पत्नी के रूप में दिव्य देवी के रूप में स्वीकार किया गया है। जब तक मनुष्य अकेला रहता है तब तक वह अपूर्ण रहता है, उसका जीवन स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियों में ही बीतता है नैतिक जीवन के जो संस्कार मनुष्य में बाल्यावस्था में पड़ते हैं। उनका विकास गृहस्थ जीवन में होता है प्रेम और निष्ठा मय और त्याग श्रम और पालनशील और सहिष्णुता आदि सदगुणों का उन्नयन पूर्ण रूप से गृहस्थ जीवन में ही होता है। गृहस्थ मनुष्य की सर्वाङग्र्णता का विद्यालय है और विवाह उसका प्रवेश। उस दिन से मनुष्य का क्षेत्र विभाजन होता है पुरुष आजीविका और उदर पोषण के सात्विक कर्मा में लगता है, स्त्री गृहकार्य सम्हालती है। इन कार्यों में विवेक सत्यनिष्ठा, और विचार से ही गृहस्थ जीवन सफल होता है जैसा कि स्पष्ट है कि मनुष्यत्व का विकास भोग से नहीं संयम से होता है विवाह एक संकल्प है जो राष्ट्र के भावी वल सत्ता और सम्मान को जाग्रत रखने के लिए किया जाता है ।

रामचरित मानस में गोस्वामी जी ने जो आदर्श, मानवीय व्यवहार, परिवार, जीवन, आर्थिक, सामाजिक परम्पराओं के निवर्हन की क्रियाओं को सहज ढंग से प्रस्तुत किया है ऐसे ग्रंथ के अन्तर्गत स्त्री पीड़ा और संघर्ष को ऑकलन करना अपरिहार्य हो जाता है क्योंकि आज के परिवेश में जो वातावरण अनुग्रहीत हो रहा है से सम्बन्धित स्थिति, परिस्थिति का विचार विमर्श होना और सम्बन्धित उन कारकों का कारण निवारण स्पष्ट होना तथा सुझावात्मक बिन्दुओं को रखकर आधुनिक परिवेश के लिए एक जाग्रत चेतना प्रदान करना राष्ट्र हित में सम्भावी होगी। रामचरित मानस में कुम्मज ऋषि की कथा न सुनना, और शंकर जी द्वारा

बालक रूप में सच्चिदानन्द जग पावन को प्रणाम करने पर सती के हृदय में संदेह पैदा हुआ, इस पीड़ा से दुखी होकर यहाँ तक विचार कर लिया कि ब्रह्म तो व्यापक है व नरतनु धारण नहीं करेगा और वह सर्वग्य है जो इस अग्य भाव से अपनी नारी को खोजेगा, इस प्रकार हृदय संसय की जागृति हुई, स्वंय शंकर जी उन्हे समझाते है कि वह मेरे इष्ट देव हैं लेकिन संसयात्मक पीड़ा से पीडित सती ने परीक्षा लेने की बात विचार की और शिव से जबरदस्ती परीक्षा के लिए आज्ञा ली। वह लिखते हैं-

जौं तुम्हरें मन अति सन्देहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू।।[४]

तब शंकर जी ने कहा कि मेरे कहने पर भी यदि इनका सन्देह दूर न हुआ तो लगता है अब विघाता इनके विपरीत है, अब वही होगा जो लिखा है।[५]

इहाँ संभु असमन अनुमाना। दच्छसुता कहुँनहिं कल्याना।।
मोरेहु कहें न संसय जाही। विधि बिपरीत भलाई नाहीं।।
होइहि सोइ जो रामरचिराखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा।।

अव स्वंय प्रभु ने पहचान लिया, कहा कि अकेली जंगल में क्यो घूम रही हो वृषकेतु कहाँ है तब उन्होने राम के प्रभाव और शंकर जी के पूछने पर झूठ बोला कि मैंने कोई परीक्षा न ली, तब सिव ने अपने योग बल से देखा और इन्होने तो सीता का रूप बना लिया और उनका परित्याग किया।[६]

कछु न परीक्षा लीन्हि गोसाई। कीन्हि प्रनाम तुम्हारीहि नाई।।
एहिंतन सतिहि भेंट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं।।

अपने पीड़ित जीवन में संघर्ष करती हुई सती ने अन्त में अपने पिता के यहाँ यज्ञ में अपने शरीर को भस्मी भूत किया। तब उनको ज्ञात हुआ कि मैं ही अपनी अज्ञानता के कारण गलती पर भी शिव ही सत्य है जो मैंने उनका अनादर किया।[७]

सतीं मरत हरिंसन बरू मॉगा, जनम जनम सिव पद अनुरागा।।

इसी प्रकार एक सुन्दर पीड़ा का प्रकरण मिलता है कि जब अत्याचार पापाचार से पृथ्वी ग्रस्त हो गई स्थिति इस प्रकार बन गई।[८]

बाढ़े खलु बहु चोर जुआरा, जे लंपट परधन परदारा।।
मानहिं मातुपिता नहिं देवा, साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।।

स्थिति हिसात्मक हो गई अनीति चारों ओर फैल गयी थी, धर्म की मर्यादा छूट रही थी और इस अतिसय स्थिति इस प्रकार बनी कि अतिसय रगड़ करे जो कोई अनल प्रगट चन्दन ते होहि।। तो पृथ्वी पर राज्य करने वाली घरा अकुला गई मैं सब कुछ सहन कर सकती

हूँ लेकिन धर्म की ग्लानि मुझसे सहन न ही पायेगी, उस घरा ने धेनु का रूप धारण कर सुर मुनि गन्धर्वों से मिली अपने सन्ताप से पीडित स्थिति को सुनाया, सभी ने कहा कि मुझसे यह कार्य न होगा तब सृष्टि रचियता उमा के यहाँ गये और ब्रह्म भी इनकार करते हुए उस अविनासी तत्व से कार्य होगा जिसका सम्पूर्ण संसार दास से कहने लगे।[६]

धरनि धरहि मनधीर, कहि बिरंचि हरि पदसुमिस।
जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारून विपति।।

उसी समाज में शंकर जी ने कहा कि वह अविनासी तल तो जर्रे जर्रे में व्याप्त है।[१०]

हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना।।

उसकी तो संगठनात्मक शक्ति के रूप में प्राप्ति की जा सकती है तब सभी द्वारा एक सुर से अविनासी तत्व की प्रार्थना की गई, जो जय जय सुर नायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।। आकाश वाणी हुई कि है ऋषि मुनि जन डरो मत मैं नर रूप में अवतार लेकर आपको कष्ट को हरूगा, जिसका संघर्षात्मक परिणाम धरा की देन है।[११]

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा।।
हरिहउँ सकल भूमि गुरू आई। निर्भय होहु देव समुदाई।।

ब्रह्म के आदेश पर सभी सुर मुनि जन अपने अपने लोक व गृह को चले गये और यह कहा कि ध्यान रहे जब नर अवतार हो तो हम सभी वानर तनु धारण कर उनकी मदद करेगें। इस अवतार की डिमडिम घोष को बड़े बड़े ऋषि मुनि ध्यानी, तपस्वी सभी जनों ने सुना था जो अपने तपोबल के आधार पर क्यों न अवतार मेरे ही क्षेत्र में हो इस पीड़ा से पीडित वसिष्ठ पत्नी आरून्धती ने विचार किया क्या ?

देश सवारत तीन है, सत्तसती और सूर। देश विगारत तीन हैं कायर कपटी कूर।।

जैसा कि स्पष्ट है कि ये छः वस्तुएँ हमारे ही शरीर में व्याप्त है सन्तभाव सतीत्वभाव, सूरताभाव, कपटभाव, कायरताभाव, तो हमारा समाज परिवार, देह सभी विगड़ जायेगी यदि कायर कपट और क्रूरता का प्रवाह होगा, वही पर सभी बन जाएगा यदि सन्तता सतीत्वता, सूरता का प्रभाव होगा, तो मरे पास ३ वस्तुएँ उपलब्ध हैं, १. मैं स्वंय सतीत्वभाव रखती हूँ, मेरे पति देव सन्त हैं, मेरा राजा तो धर्मज्ञ है और सूरता को धारण किए तो अवतार यही होना चाहिए इसी क्षेत्र में होना चाहिए इस पीड़ा से पीड़ित आरून्धती ने योजना बनाई और महिला सशक्ती करण का प्रथम परचम फैलाने वाली स्त्री स्वरूपा आरून्धती अपने पति से विचार विमर्श की और उनकी चेतना को अपने संघर्ष से जगाया कि आपकी गुरूता किस काम की जो आपका शिष्य दसरथ और उनकी पत्नियाँ पुत्र के लिए दुखी हों। वे धर्मज्ञ, बुजौकी खान और भक्ती के लहर जिनके हृदय में प्रवाहित है।[१२]

अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ।।
धरमधुरन्धर गुननिधि ग्यानी। हृदयँ भगति मति सारँगपानी।।
कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीति।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल विनीत।।

आरूधन्ती की पीड़ा ने अपने संघर्षात्मक कार्यो का क्रिष्यान्वयन करते हुए पुत्रोहि यज्ञ करवाया और चार पुत्रों की प्राप्ति हुई जिनका उद्देश्य अत्याचार पापाचार का विनाश करना हुआ।[१३]

भए प्रगट कृपाला दीन दयाला कौशिल्या हितकारी।
बिप्र धेनु सुर सन्त हित लीन्ह मनुज अवतार।

सुमित्रा जो लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माँ हैं उनको जब पुत्रेष्टि यज्ञ की हवि दी गई तो उन्होने जरूर विचार किया होगा कि तीनों रानियाँ समानता का अधिकार रखने वाली हैं लेकिन कौशिल्या और कैकेई को तो राजा ने अपने हाथ से दिया मुझे अपने हाथ न देकर अपनी रानियों द्वारा दिया गया तो यहाँ सुमित्रा को पीड़ा होना स्वाभाविक है जैसा कि मानस में लिखा हैं–[१४]

अर्धभाय कौसल्यहि दीन्हा, उभय भाग आधे कर कीन्हा।
कैकेई कह नृप सो दयऊ, रहो से उभय भाग पुनि भयऊ।
कौसल्या कैकेई हाथ धरि, दीन्ह सुमित्रहिं मन प्रसन्न करि।।

रामतिलक में कैकेई और सुमित्रा की चर्चा भरपूर है लेकिन सुमित्रा की चर्चा के सम्बन्ध में अस्तित्व हीनता दृष्टि गोचर होती है लेकिन इन सबकी परवाह न करती हुई सुमित्रा ने अपने आत्मिक विश्वास को मजबूत कर अपने पुत्रों को वह शिक्षा दी कि आज भी मानवीय क्रियाएँ और चर्चाएँ उनकी झपी रहेगी। लक्ष्मण के वनवास समय में अनुमति मांगते समय उसी आत्मिक बल से सुमित्रा ने कहा।[१५]

जौं पै सीय राम वन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं।।
राग रोष इरिषा मदु मोहू। जनि सपेनहुँ इन्ह के बस होहू।।

जब राम विवाह कर अयोध्या लौट रहे हैं सारी नगरी में राम सीता विवाह की धूम है लेकिन सुमित्रा आनन्द साधन सजा रही है। उसे न कोई अभिमान न सम्मान की लालसा न कोई आकाँक्षा न जलन।

चौके चारू सुमित्राँ पूरी, मनिमय बिबिध भाँति अतिरूरी।। [१६]

चित्रकूट में राम लक्ष्मण ने जब सुमित्रा माँ के पैर छुए तो ऐसा लगा कि मानो किसी दरिद्र को सम्पत्ति पड़ी हुई मिल गई हो।

गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनुभेटी सम्पत्ति अति रंका।। [१७]

संघर्ष का परिणाम हुआ जब हनुमान द्वारा लक्ष्मण के मूर्छित होने के वृतान्त बताया गया तो सुमित्रा ने कहा कि राम अपने को अकेला महसूस न करें, मैं शत्रुघ्न को भेज दूंगी। इससे स्पष्ट होता है कि कैकेई और कोशिल्या अपने को स्वंय छोटा महसूस करने लगी।

उर्मिला प्रकरण पर स्वंय उर्मिला ने कह दिया कि चौदह वर्ष में दो सतियों के बीच सतीत्व तप की लड़ाई है, जिसका तप ऊंचा रहेगा विजय उसी की होगी इसी बात पर लक्ष्मण प्रतिज्ञावध्य हुए 'नीद नारि भोजन परिहरहीं। बारह बरस तासु कर मरहीं ।।

और अपने उर्मिला के बिरहामुक स्थिति को सम्बल बनाकर और उर्मिला ने मॉ सुमित्रा के धैर्य, संयम और शुभ आशाओं से चौदह वर्ष व्यतीत किए।

इसी प्रकार रामतिलक के समय मन्थरा जो अपनी आत्म सलागा हो पीड़ित भी उसके द्वारा कैकेई को सौत की कथा सुनाकर और कुटिलपन दर्शाते हुए कैकेई जो भरत से अधिक राम को मानती थी १४ वर्ष के लिए वनवास भिजवा दिया।[१८]

नामु मन्थरा मन्दमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहिंकरि गई गिरा मति फेरि।।

सौत की कथा सुनाई जो मोह और मद के कुप्रभाव का मंथरा की योजना शक्ति व लगन और दृढ निश्चय अपने आप में आद्धि तीम है।[१९]

कद्रूँ विनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिल्याँ देब।
भरतु वंदिगृह साहहहिं लखनु रामु के नेब।।
रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहि विधि बाढ़ बिरोधु।।

कैकेई भी इस विचार धारा से पीड़ित होकर अपने लक्ष्य के निर्धारण में संघर्षात्मक कदम उठाने को मजबूर हुई और अपने लक्ष्य की प्राप्ति की।[२०]

मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेह बरदान दुअइ तेउ पावत सन्देहु।।
होत प्रात मुनि वेष धरि जौं न रामु बन जाहि।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअं मन माहिं।।

शूपनखा जो कामवासना से पीड़ित, राम लक्ष्मण को देखकर विकल हुई और इस वासनात्मक पीड़ा से दुखी होकर उसने किस प्रकार से अपना त्रिया चरित्र फैलाया कि जिसे उसके भाई, परिवारीजन न समझ पाए और इस प्रकार भिड़ाया कि अपनी प्रतिशोध की अग्नि

को भी, जिससे सदैव पीड़ित रहती थी, उसके पति को रावण द्वारा मार दिया गया था उसको भी पूरा किया।[२१]

सूपनखा रावन कौ बहिनी, दुष्ट हृदय दारून जस अहिनी।
पंचबटी सो गई एक वारा, देखि बिकल भई जुगल कुमारा।।
तुम्ह समपुरुष न मोहि सम नारी। यह संजोग विधि रचा विचारी।।

जब वह राम लक्ष्मण के समक्ष अपना प्रस्ताव रखती तो उसके मनोभाव में यह बात उत्पन्न हुई-

मोहि ने नारि नारि के रूपा।

तब वह सीता की आरे झपटी और रूप भंयकर बनाया जो कामुकता का प्रतीक है।[२२]

सीतहिं सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई।।
लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनुकीन्हि।
ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि।।

अपनी पीड़ा से पीड़ित संधर्षात्मक स्थिति में उसने अपने तीन भाई खर, दूषन और भिमिरा मरवा दिये और अपने भाई जो धनावन विद्वान बलवान और बुद्धिमान है उसके पास गई और किस प्रकार चरित्र फैलाया।[२३]

सभा माझ परि व्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकन्धर मोरि कि असिगति होइ।

कहने लगी ।।[२४]

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष सिंध बन खेतान आए।।
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी।।

इधर रावन अपनी योजना बदले की भावना से बनाता है।[२५]

सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति।
गयउ भवन अतिसो चबस नींद परइ नहिं राति।।
तौ मैं जाइ बैर हठि करऊँ, प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ।।

इस प्रकार शूपनखा द्वारा अपनी कमेच्छा के मर्म के लिए ही उसने सम्पूर्ण कुल का विनाश करवा दिया। स्त्री स्वरूपा भिजटा जिसका राक्षस वंश में जन्म, राक्षसी वातावरण और कठोर राक्षसी दिनचर्या में पली हुई जिसने अपने नारीत्व की गरिमा, नारीत्व की संवेदनात्मक अनुभूति का अहसास रखते हुए सीता की पीड़ा को समझा और उनको समझाया कि धैर्य धारण करो और सभी राक्षसियों को सीता के पक्ष में किया।[२६]

सपने बानर लंका जारी, जातुधान सेना सब मारी।
खर आरूढ नगन दस सीसा, मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।
नगर फिरी रघुबीर दोहाई, तब प्रभु सीता बोलि पठाई।।

अपनी भावनात्मक पीड़ा से पीडित त्रिजटा ने अपना जीवन दाँव पर लगा दिया, जिस रावण को विभीषण, प्रहस्त माल्यवंत, मारीच और जटायु न रोक सके उसके विरूद्ध त्रिजटा से अपनी धर्मध्वजा फैजाकर सीता को धैर्य बंधाते हुए एक नारी की पीड़ा जो संताप युक्त में अपना योगदान दिया।

स्त्री पीड़ा को समझने वाली मन्दोदरी जो लंकेश रावण को अपने भवन के अन्दर आपसे वह सिन्दूर की भीख मॉग रही है ऑचल को फैला दिया और राम और आप में सूर्य और जुगनू जैसा अन्तर है अतः उनकी सीता वापिस कर दो मही शास्त्र सम्मत नीति है अत हम लोगों का चौथापन लग गया है अतः हरि का ध्यान भजन करना की श्रेष्ठ होगा। अहंकार जो समूल का विनाशक है उसका परित्याग करें इस संधर्षात्मक स्थिति में मन्दोदरी एक नारी की पीड़ा के लिए लंकेश रावण से विरोध कर लेती है।[२७]

कर गहि पतिहि भवन निज आनी, बोली परम मनोहर वानी।
चरन नाइ सिर ॲचलु रोपा, सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा।।
नाथ बयरू कीजे ताही सों, बुधिबल सकिइज जीत जाही सों।
तुम्हहि रघुपतिहि अन्तर कैसा, खलु खद्योत दिनकहिर जैसा।।
रामहि सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ।।

रामचरित मानस में स्त्री पीड़ा और संषर्घ की परिकल्पना में संस्कृति का डिजाइन करना अपरिहार्य होगा, इसके अन्तर्गत रावण संस्कृति और राम संस्कृति का आनिर्भूत हुआ है जिसमें दृष्टिगोचरोपरान्त रावण संस्कृति का हस्तक्षेप मन्थरा कैकेई आदि के माध्यम से होता है लेकिन राम की सहनशीलता, संयम और बुराई में अच्छाई निकालने की क्षमता उन शापों को वरदान बना देती है लेकिन रावण संस्कृति में जब जब राम संस्कृति के अंकुर दिखते हैं तो रावण अपने अंहकार के मद में उन्हें अपमान सूचक समझकर उखाड़ फैंकता है। रावण के पक्षधरों ने यदि अंहकार को विवके का रास्ता दिखाना चाहा तो उसने उस ज्ञान और विवके को तिस्कृत किया, वहीं पर राम की सहिष्णुता ने जहाँ मंथरा और कैकेई की कुवुद्धि में से भरतवृद्धि का अविर्भाव किया। राम उच्च कुल के होते हुए भी केवट, निषाद, जटायु, शयरी सुग्रीव हनुमान अंगद व जामवन्त को अपना बनाया, वही रावण ने शक्ति के मद में अपने

कुलवंशियों को भी अपने से दूर ढ़केलता रहा। समाज की इस अधोगति में कोई धर्म ग्रन्थ ऐसा नहीं है जो बिना पाप की या परमात्मा का भय दिखाते हुए सीधामार्ग दर्शन कर सकता हैं यदि संत शिरोमणि गोस्वामी का महान ग्रन्थ रामचरित मानस को सही रूप में समझाया जाए, उसे अपनाया जाए तो आज की समस्याओं पर विश्वास प्रद मार्ग दर्शन मानव मात्र प्राप्त कर सकता है समस्याओं से निजाद पा सकता है और स्त्री पक्ष को भी मानस के माध्यम से उसकी पीड़ा में सहानुभूति प्राप्त हो सकती है, बशर्ते वह उसे उसी तरह मानस धारणा को धारित करे जैसे हारित लकड़ी का परित्याग नहीं कर सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. पतंजलि दर्शन, क्षीर स्वामी कामत
२. वही
३. नारी निरूपण, आचार्य सत्यपालशास्त्री, वैदिक साधना आश्रम, इन्द्रपुरी मॉट मथुरा।
४. श्री रामचरितमानस, बालकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर पृ०-७३
५. वही, पृ०-।२७३
६. वही,
७. वही, पृ०-८४
८. वही, पृ०-१८४
९. वही, पृ०-१८५
१०. वही, पृ०-१८६
११. वही, पृ०-१८८
१२. वही, पृ०-१९१
१३. वही, पृ०-१९३
१४. वही, बालकाण्ड पृ०-१९०
१५. अयोध्याकाण्ड, पृ०-
१६. अयोध्याकाण्ड, पृ०-३५०
१७. वही
१८. अयोध्याकाण्ड, पृ०-३५३
१९. वही, पृ०- ३५१
२०. वही, पृ०- ३६६, ३७१
२१. अरण्यकाण्ड, पृ०- ६४१
२२. वही, अरण्यकाण्ड, पृ०- ६४३
२३. वही, पृ०-६५०

२४. वही, पृ०-६५०
२५. वही, पृ०-६५१
२६. सुन्दरकाण्ड, पृ०-७२४
२७. लंकाकाण्ड, पृ०-७७७, ७७८

-एसो० प्रो० (हिन्दी-विभाग)
श्री अग्रसेन महाविद्यालय,
मऊरानीपुर, झाँसी

शमशेर बहादुर सिंह : प्रगतिशीलता और रोमानियत का अद्वैत

–डॉ० गोपाल सिंह

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित लेकिन तबियत से रोमांटिक शमशेर बहादुर सिंह का जीवन भी उनके आदर्श कवि निराला की तरह ही विपन्नता और प्रभावों में बीता। घोर आर्थिक संकटों के चलते उनका जीवन एक ओर सही अर्थों में सर्वहारा का जीवन था तो दूसरी ओर बचपन में माँ और युवावस्था में पत्नी की मृत्य के कारण जीवन में प्रेम और स्नेह का कोना भी कहीं-न-कहीं खाली ही था। इन दोहरे अभावों में शमशेर के अन्दर ऐसी गहरी वेदना का संचार किया जो उनके अन्दर स्थाई करूणा का रूप लेती प्रतीत होती है, शमशेर खुद स्वीकार करते हैं कि ''मेरी असली जमीन तो रोमानी ही थी और रोमानी ही बनी रही, जिसमें इकबाल और शैली की अरविन्द निराला और रवीन्द्रनाथ के छायावादी या रहस्यवादी अद्वैत की छाया भी कहीं-न-कहीं शामिल थी।''[१] किन्तु शमशेर की यह रोमानियत शमशेर को महज काल्पनिक भावलोक का चतुर चितेरा नहीं बल्कि यथार्थ का सशक्त द्रष्टा बनाती है कवि ने कष्ट और वेदना सहकर जो ऊर्जा और अन्तर्दृष्टि प्राप्त की है उसका उपयोग वह समाज को सुखी और सशक्त बनाने में करता है। अपने जीवनानुभावों को वो अपनी कला के माध्यम से शेष समाज के सामन रखते हैं जिससे समाज उसका लाभ उठा सके। उनका कथन है ''जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को अपनी कला में सजीव से सजीव रूप देते जाना इसी को मैं साधना समझता हूँ।''[२]

शमशेर मूलतः रोमानी कवि हैं वह स्वयं और उनकी कविताएं इसका सशक्त उदाहरण हैं, किन्तु उनका रोमान एक गैर रोमानी दुनिया के बीच स्व अर्जित हठी रोमान है 'डब डबाई आँखो से सितारों भरे आसमान को पा लेने की चाह जैसा।'' उनका रोमान जिस संसार में आँख खोलता है उसकी हकीकत यह है-

''एक रोमान
जो कहीं नहीं है मगर जो मैं
ही हूँ,
एक गूँज उबड़-खाबड़

लगातार
आँख जो अंखुआ
आई हो बहुत ही करीब बहुत
ही करीब।''[३]

शमशेर की रोमानियत उनके जीवन में निरन्तर लगे रहने वाले अभाव कष्ट और वेदना की देन है, अपने जीवन में शमशेर प्यास के पहाड़ों पर झरने की तरह तड़पते रहे।

''मुझको प्यास के पहाड़ पर लिटा दो जहाँ मैं
एक झरने की तरह तड़पता रहा हूँ।।''[४]

परन्तु यह वेदना उन्हें कहीं से भी कुण्ठित या आत्मसीमित नहीं करती बल्कि उनके हृदय का विस्तार ही करती है साथ ही अभाव उन्हें तोड़ते नहीं बल्कि संघर्ष की प्रेरणा देते हैं। शमशेर की अनुभूतियों का विस्तार उस सीमा तक पहुँच चुका है, जिसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हृदय की मुक्तावस्था कहा है।

हृदय की यह मुक्तावस्था ही उन्हें एक और साहित्य साधान के लिए आवश्यक ऊर्जा देती है दूसरी ओर जीवन और प्रकृति के सौन्दर्य को देखने और अनुभव करने में समर्थ बनाती है। कष्ट वेदना और अभावों के बीच में शमशेर काव्य में प्रेम और सौन्दर्य के जो अकुण्ठ चित्र मिलते हैं उसका मर्म इसी में छिपा है और इस मर्म को न समझ पाने के कारण ही सामान्यतः आलोचकों को शमशेर विरोधाभाषांक पुंज नजर आते हैं।

कत्थई गुलाब
दबाए हुए है
नर्म नर्म
केसरिया साँवलपन मानो
शाम की
अंगूरी रेशन की झलक
कोमल
कोहरिल
बिजलियाँ सी लहराए हुए है।'' [५]

सौन्दर्य और प्रेम शमशेर के लिए एक सम्पूर्ण जीवन है जहां वे अपने को पूरी तरह समर्पित करते हैं और सुरक्षित महसूस करते हैं, क्योंकि वहीं से जीवन के सारे राग रंग निकलते हैं साथ ही प्रेम सागर के मंथन से जो जाहर निकलता है उसे शमशेर ने पिया भी है और जिया भी। यही वह पीड़ा है जो उनके काव्य में अपार करुणा में बदली है यही 'पीड़ा

उन्हें सम्पूर्ण मानवता का दुःख पहचानने में समर्थ बनाती है और शोषण और अन्याय के खिलाफ विद्राह करने के लिए प्रेरित भी करती है इस प्रकार रोमानियत के साथ प्रगतिशीलता शमशेर की कविता का मूल स्वर बन जाती है।

वस्तुतः करुणा ही प्रगतिशीलता का भी मूल है अपने जीवन के कष्ट और अभावों के प्रति भी संवेदनशील होता है और इसी से विद्रोह और प्रतिकार का स्वर फूटता है। शमशेर की बल शीर्षक कविता में समाज में व्याप्त शोषण और अन्याय का प्रतीकात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

मुझे वह इस तरह निचोड़ता है
जैसे पानी में एक-एक बीज कसकर दबाकर
पेरा जाता है
मेरे लहू की एक एक बूँद जिसके लिए
समर्पित होती है।" [६]

डॉ० प्रभाकर श्रोत्रिय के अनुसार- "अनुभूति स्पर्शी कविता भाषणधर्मी कविता की तलुना में शोषण की यातना और उससे जन्म लेने वाले प्रतिकार को अधिक सशक्त अर्थात् हृदय को हिला देने वाले अन्दाज में व्यक्त करती है।"[७]

शमशेर का मार्क्सवाद के प्रति गहरा झुकाव था और वे प्रगतिशील आन्दोलनों का आज की जिन्दगी की सच्ची परख वाला आन्दोलन भी मानते थे। किन्तु वे कभी भी किसी एक विचारधारा से बँधकर नहीं रहे, मार्क्सवादी विचार या सिद्धान्तों से भी नहीं।

वे स्वयं लिखते हैं-

"मेरे कवि ने कभी किसी फार्म या शैली या विषय का सीमा बन्धन स्वीकार नहीं किया। फैशन किन विषयों पर लिखने का है या किस वाद का युग आ गया है या चला गया है मैंने कभी इसकी परवाह नहीं की।"[८]

अपने इसी वैचारिक खुलेपन के कारण ही शमशेर माक्सर्ववाद की क्रान्तिकारी आस्था और भारत की सुदीर्घ सांस्कृतिक परम्परा के बीच सामंजस्य बैठा सके हैं, निजता और सामजिक में सन्तुलन साध सके हैं।

गैर प्रगतिशील दृष्टिकोण किसी भी प्रगतिशील समाज की अनिवार्य विशेषता है साम्प्रदायिकता को निरन्तर करने के लिए सामासिक संस्कृति की आवश्यकता होती है, शमशेर ने अपने साहित्य के माध्यम से उसका सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है "इनमें ही यह क्षमता हो सकती थी कि अपने को हिन्दी और उर्दू का दो-आब कहकर सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन

में साम्प्दायिकता को निरन्तर करें, वही रूढ़िवाद जातिवाद का उपहास करते हुए कह सकते थे- ''क्या गुरूजी मनु जी को ले आएँगे, हो गए जिनको लाखों जनम गुम हुए।''

वस्तुतः जो लोग शमशेर को रोमानियत और उसकी प्रगतिशील चेतना को विरोधाभाषी प्रवृत्तियां करार देते हैं। वे न तो प्रगतिशीलता को न रोमानियत को और न ही शमशेर को समझ पाए हैं वे शमशेर के रोमानियत में छिपी पीड़ा को और उस पीड़ा में छिपी गहरी मानवीय चिन्ता को नहीं देख पाते हैं। शमशेर को यह पीड़ा उन्हें जितना अपने निजी जीवन के अभावों के प्रति संवेदनशील बनाती है सच्चे मानवतावादी का यह वह लक्षण है कि अपने निजी जीवन में कष्ट और वेदना की आग में तपकर उसने जो प्रकाश और अन्तदृष्टि पायी है उससे समाज को भी लाभान्वित होने दें। शमशेर पहले ऐसे कवि नहीं है जिन्होंने मानवीय करूणा को अपनी प्रगतिशील चेतना और काफी हद तक विद्रोह चेतना का आधार बनाया हो। हिन्दी के पहले विद्रोही कवि कबीर भी ऐसा कर चुके थे। उनकी वाणी का ओज भी समाज में व्याप्त कष्ट और अभावों को उपेक्षा और अपमान को महसूस करने के बाद आया। कबीर लिखते हैं।

''सुखिया सब संसार है खावै अरु सोवै
दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवै।''।''[८]

वस्तुतः समाज के प्रति संवेदनशील कोई भी मन करुणाद्र हो ही उठेगा। समाज में व्याप्त अभावों को देखने वाली कोई भी आँख गीली हो ही जाएगी फिर शमशेर की आँख गीली हुई तो इसमें आश्चर्य क्या है। अतः शमशेर की रोमानी कही जाने वाली कविता सिर्फ आत्मिक तोष के लिए नहीं लिखी गई है बल्कि वह गहरे सामाजिक सरोकारों से जुड़ी हुई है जो लोग शमशेर की रामेनियत को सिर्फ कल्पना का सुख समझते हैं उनसे शमशेर स्पष्टतः कहते हैं।

मेरी बातें भी तुझे ख्वाब-ए जवानी सी हैं,
तेरी आँखों में अभी नींद भरी है शायद।''[९]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शमशेर की प्रगतिशीलता पर मात्र वे ही सवाल उठा सकते हैं जो राजनीतिक नारेबाजी को ही प्रगतिशीलता मान बैठे हैं। शमशेर की रोमानियत व संवेदनशीलता उनमें जिस करुणा को उत्पन्न करती है वह करुणा ही किसी कवि को प्राणिमात्र के प्रति संवेदनशील बनाती है। यह संवेदनशीलता उनके प्रति अधिक है जो वंचना और शोषण के शिकार हैं अतः शोषित, पीड़ित जनता की आहों को अभिव्यक्त करना यदि प्रगतिशीलता का वास्तकि स्वर माना जाए तो निश्चय ही शमशेर इस धारा के सबसे बड़े स्वर सिद्ध हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. सिंह शमशेर बहादुर, १९८०, 'उदिता' वाणी प्रकाशन, दिल्ली
२. सिंह शमशेर बहादुर, १९५१ दूसरा सप्तक की भूमिका, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली
३. सिंह शमशेर बहादुर, १९७५, चुका भी नहीं हूँ मैं, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
४. सिंह शमशेर बहादुर, १९६१, कुछ और कविताएँ, राधा प्रकाशन, दिल्ली
५. सिंह शमशेर बहादुर, १९८०, इतने पास अपने, राम कमल प्रकाशन, दिल्ली
६. सिंह शमशेर बहादुर, १९८०, काल तुझसे होड़ है मेरी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
७. डॉ० श्रोत्रिय प्रभाकर, १९९७, शमशेर बहादुर सिंह : साहित्य अकादमी (भारतीय साहित्य के निर्माता), दिल्ली
८. सिंह शमशेर बहादुर, १९६१, कुछ और कविताएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
९. सिंह शमशेर बहादुर, १९८०, इतने पास अपने, राज कमल प्रकाशन, दिल्ली

–असिस्टेण्ट प्रोफेसर (हिन्दी)
श्री गाँधी महाविद्यालय
सिधौली, सीतापुर

अनुपमेय शंकर में आदि शंकराचार्य : एक सांस्कृतिक विमर्श

–दिनेश कुमार

भारतीय संस्कृति विश्व में एक अनुपम संस्कृति है। संस्कृति के संवाहक ऋृषि-मुनि हैं। यह संस्कृति हमारे पूर्वज एवं भारत के महान व्यक्तित्वों के द्वारा निर्मित है। यह संस्कृति विश्व की सिरमौर वाली संस्कृति है। इस संस्कृति में एक से बढ़कर एक महान पुरुष हुए हैं, जिन्होंने संस्कृति की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहृति तक दी है। भारत के प्रख्यात आदिगुरु, काव्यशास्त्रों के ज्ञाता, प्रकांड विद्ववान महज बत्तीस वर्ष की संक्षिप्त उम्र में बैकुंठ धाम में पधारने वाले आदि गुरु शंकराचार्य का एक प्रसंग लिया गया है। जिन्होंने भारतीय ज्ञान परंपरा को आगे बढ़ाने एवं उसका अस्तित्व सुरक्षित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तत्कालीन परिस्थितियों में जो विभिन्न समाजों में परंपरागत बुराइयाँ, कुप्रथाएं चल रही थीं। सबके लिए एक संस्कृति का निर्माण करना, एक सभ्य समाज का निर्माण करना, संतों, महात्माओं, मठाधीशों के अस्तित्व को सही रूप में प्रतिष्ठित करना, अपने आप में आदिगुरु शंकराचार्य जी का महत्वपूर्ण विवेचन, विमर्श, जिनके बारे आज भी चिंतन एक सांस्कृतिक विमर्श किया जा सकता है।

बौद्ध मत के प्रख्यात आचार्य धर्मकीर्ति ने एक श्लोक में कहा था-

"वेदप्रामाण्यं कस्यचित् कर्तृवादः, स्नाने, धर्मेच्छा जातिवादापलेपः।
संतापः पापहानाय चेति, ध्वस्तप्रज्ञानां पंचचिह्नानि जाड्ये।।"

इसका अर्थ है- वेद को प्रमाण मानना, जगत् के निर्माता के रूप में ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करना वर्ण और जाति पर अभिमान करना, संताप प्रायश्चित से पापक्षय होता है, इस पर विश्वास करना, जिनकी प्रज्ञा नष्ट हो गई है, उनकी जड़ता के ये पाँच चिह्न हैं। धर्मकीर्ति के इस उपेदश से जनसमुदाय में अनांस्था बढ़ रही है। भारत की पवित्र नदियों पर अश्रद्धा हो रही थी। तीर्थयात्रा समाप्त हो गई थी। भाषा और प्रदेश अनेक होने के कारण संस्कृति और एकता के छिन्न-भिन्न हो रहे आधार को अपनी शिक्षा से आदिशंकराचार्य ने स्थापित एवं प्रमाणित किया एवं भारत को सांस्कृतिक एकरूपता प्रदान की।"[1] अपने उपदेशों में उन्होंने कहा-

"मयि त्वयि चान्यत्रैकोविष्णुः व्यर्थं कुप्यसि सर्वसहिष्णुः।"

मुझमें, तुझमें, सर्वत्र ही एक ही विष्णु है, इसलिए किसी पर क्रोध न करो, रागद्वेष न करो। सबको अपनी आत्मा समझो। आनंद के लिए सांसारिक भोगों की और दौड़कर कष्ट पाने वाले जनों को उन्होंने बताया कि जहाँ प्रियता है, वहीं आनंद है, सबका परम प्रेमास्पद आत्मा है और इसी कारण वह आनंदस्वरूप है। उसकी आनंदस्वरूपता अज्ञान से आवृत्त हो गई है, ज्ञान से उसका निराकरण हो सकता है। मुक्ति के संदर्भ में समाज में यह भ्रम फैलाया गया था कि मृत्यु के पश्चात ही मुक्ति हो सकती है। इसका निराकरण करते हुए आदि शंकराचार्य ने परिभाषित किया कि आत्म-साक्षात्कार के द्वारा जीवनकाल में भी मुक्ति प्राप्त हो सकती हैं।"[२] यह सब अपने वेदों-उपनिषदों का तात्पर्य था, जिसको जनता भूल रही थी। उन्होंने प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता) पर भाष्य लिखकर वेदों का तात्पर्य सहज-सुबोध शैली में समझाया। उनके सिद्धांत का भारत ही नहीं, समस्त विश्व में स्वागत हुआ। उनके द्वारा स्थापित चारपीठ यज्ञमंडप के चार द्वार हैं। उनके जीवन में अनेकों घटनाएँ घटी हैं। गोविंदपाचार्य से दंड की दीक्षा लेकर उन्होंने अनेक बार भारत का भ्रमण कर अद्धैत सिद्धांत को पुनर्स्थापित कर बत्तीस वर्ष की अल्पायु में केदारनाथ में देहोत्सर्ग किया, जहाँ उनकी समाधि आज भी अवस्थित है। कूर्म पुराण में लिखा है-

"चतुर्भिः सह शिष्यैस्तु शंकरोंवतरिष्यति"

अर्थात् चार शिष्यों के साथ उन्होंने अवतार धारण किया। यह पुराणों से भी प्रमाणित है। लेखन निपुण नीरजा माधव ने रोचक ढंग से उनके जीवन पर प्रकाश डालकर बहुत उत्तम कार्य किया है। साामान्य मुनष्य समझते हैं कि शंकराचार्य शैव ही थे, किंतु नीरजा माधव कहती हैं कि वे शैव भी थे। भारत के चार धामों - हिमालय में बद्रीनाथ, उत्कलप्रदेश में जगन्नाथ, द्वारका में द्वारकाधीश के रूप में विष्णुमूर्ति ही प्रतिष्ठित हैं।"३ दक्षिण के रामेश्वर की स्थापना भी राम द्वारा हुई है। अतः यह माना जाता है कि वे षण्मतस्थापनार्चा थे। षण्मत में १ निर्गुण निराकार ब्रह्म, २ शिव, ३ शक्ति, ४ विष्णु, ५ सूर्य, ६ गणेश परिगणित होते हैं। इस प्रकार एक निराकर और पाँच साकार स्वरूप की आराधना के सिद्धांत को स्थापित किया। आज की परिस्थिति में शंकाराचार्य का उपदेश प्रासंगिक एवं उपादेय है। जिस में से मैं बिंदुवार विवेचन करूंगा जो निम्नवत होगा।

संस्कृति का अर्थ

"समान अर्थों में संस्कृति पूर्वजों से सीखे गए गुण व्यवहारों की संपूर्णता है लेकिन संस्कृति की अवधारणा इतनी विस्तार में है कि उसे वाक्य में परिभाषित करना संभव है।"

भारतीय संस्कृति का अर्थ

भारतीय संस्कृति का वातावरण ऐसा है कि जिसके अंतर्गत रहकर मनुष्य सामाजिक प्राणी बनता है और अपने आसपास के पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता अर्जित करता है।

होबेल का मत है कि "वह संस्कृति जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों से एक समूह को दूसरे समूहों से और एक समाज को दूसरे समाजों से अलग करती है।"[४]

"भारतीय संस्कृति का स्वरूप एवं उसका अवदान भारतीय संस्कृति के आश्रम व्यवस्था का पालन करते हुए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्रति भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र रहा है। प्राचीन भारत के धर्म, दर्शन, शास्त्र, विद्या, कला साहित्य, राजनीति, समाजशास्त्र इत्यादि भारतीय संस्कृति के सच्चे स्वरूप को देखा जा सकता है।"[५]

भारतीय संस्कृति की विशेषता प्राचीनता, निरंतरता, ग्रहणशीलता, वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, संयुक्त परिवार प्रणाली, संस्कार, विविधता में एकता, आध्यात्मिकता और भौतिकता का संबंध आदि गुरु शंकाराचार्य ने विविधता वाले सिद्धांत को लेकर के संपूर्ण विश्व में अद्‌वैतवात सिद्धांत का प्रवर्तन किया। जिसके अनुसार ईश्वर एक है और वही सर्वशक्तिमान है। "सृष्टि के लघु से लघु जीव और चराचर जगत में एक अखंड, असीम, परम सत्ता के अतिस्तत्व का दर्शन करना ही ज्ञान है। उससे भिन्न कहीं कोई वस्तु नहीं है, वही परम आत्मा है। जब तक प्राणी को इसका बोध नहीं होता तब तक वह जन्म मृत्यु के चक्कर से मुक्त नहीं होता। अपने इसी शुद्ध स्वरूप का स्मरण करना ही भक्ति है। इस भक्ति के लिए तुम सगुण और निर्गुण उपासना दोनों पद्धतियों से मानव को आत्म तत्व के ज्ञान के लिए प्रेरित कर रहे थे। वह कहते हैं कि शिखर तो एक होता पर उसके मार्ग विभिन्न हो सकते हैं। जिस प्रकार लक्ष्य एक होता है और उसके रास्ते अलग-अलग होते हैं ठीक उसी प्रकार अगर यदि हम किसी पहाड़ के शिखर पर चढ़ना हमारा उद्देश्य है तो वह यात्रा हम पूरब, पश्चिम, उत्तर दक्षिण किसी भी दिशा से प्रारंभ कर सकते हैं, परंतु शिखर को विस्मृति करते ही सारी दिशाएं विग्भ्रमित करने लगती हैं।"[६] भारतीय संस्कृति के संवाहक एवं अद्‌वैतवाद के प्रवर्तक आदि गुरु शंकाराचार्य ने विविधता में एकता को स्थापित करते हुए उसके उन्नयन करने का एवं उत्थान करने का आदि गुरु शंकराचार्य ने एक महत्वपूर्ण कदम उठाया था। वह कहते हैं कि भक्ति चाहे किसी भी रूप में हो, विष्णु रूप में हो, कृष्ण की ही या फिर दूसरे संप्रदाय की हो सभी संप्रदायों का और सभी धर्मों को मंतव्य एक ही है मानवता की सेवा करना, संस्कृति की रक्षा करना, जिसको लेकर आदि गुरु शंकाराचार्य को उनकी माँ सतगुरु राजगुरु आदि से परिचित

कराती है। उनके लिए उनके माँ ही सब कुछ थी माँ से बढ़कर कोई नहीं ।

महाभारत में कृष्ण को अपने अवतार के बारे में कहना पड़ा-,

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।"[७]

जब जब इस भारत भूमि पर धर्म की हानि होती है तो धर्म के उत्थान के लिए यहाँ पर अवतरित होऊँगा और साधुओं के रक्षा के लिए दुष्टों का विनाश करके धर्म की स्थापना के लिए प्रत्येक युग में जन्म लूँगा।

इसी बात को गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस में बालकांड में कहा है

जब-जब होय धर्म की हानि, बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।
तब-तब धरि प्रभु मनुज सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।। [८]

अर्थात् इस भारत भूमि पर जब कभी भी धर्म की हानि होगी, धर्म संकट में आएगा तब तक प्रभु आराध्य विष्णु अवतार श्री राम जी इस भारत भूमि पर आएंगे और सज्जनों के कष्टों का निवारण करेंगे और दुष्टों का विनाश करेंगे।

भारतीय संस्कृति विश्व की एक ऐसी संस्कृति है जो अपने आप में अनुपम और और अद्वितीय है।

यह संस्कृति सभी संस्कृतियों का समन्वय बनाकर चलती है। विविधता में एकता को प्रतिस्थापित करती है। यह संस्कृति भारतीय ज्ञान परंपरा से संबंध होकर बच्चों को संस्कार, ज्ञान, शिक्षा इत्यादि उपलब्ध कराती है यह अपने आप में एक महानतम संस्कृति है।

"आदिगुरु शंकाराचार्य बत्तीस वर्ष की अल्पायु में अनेक ग्रंथों का प्रणयन करते हुए समस्त भारत में घूम-घूम कर नास्तिक मतावलंबियों और सनातन धर्म के विरोधियों को शास्त्रार्थ द्वारा पराजित किया। भारत के चारों कोनों में चार प्रधानमठ स्थापित किए, इनके धर्म संस्थापक के कार्यों को देखते हुए ही आज तक इन्हें लोग शंकर का अवतार मानते हैं। पुत्र और तुम्हारे नाम से पूर्व भगवान शब्द लगातार उच्चरित करते हैं।"[९] अर्थात इन्होंने जो चारों मतों की स्थापना की उन प्रधान मतों में सर्वप्रथम बद्रीनाथ, उत्तरोत्तर जगन्नाथ, अंत में द्वारिका पुरी इत्यादि का जिक्र आता है। जो संस्कृति को आगे बढ़ने का कार्य करते हैं और धर्म की विभिन्न कुरीतियों को दूर करने का प्रयास करते हैं। "कुछ देर में तुमने आँखे

खोल कर मेरी ओर देखा, क्यों माँ आप इतना दुखी क्यों हो? तुम्हारी निर्मल वाणी गूँजी थी। क्या कर रहा था तू ? उल्टे ही मैंने प्रश्न कर दिया। असत्य नहीं बोल सकता।" आप जैसी माँ बहनों और वृद्धजनों को पूर्णा नदी में स्नान करते अथवा जल ले आने में इतनी कठिनाइयों का सामना न करना पड़े, इस हेतु में जगदंबा की स्तुति कर रहा था कि पूर्णा की धार को कलिटी ग्राम की ओर ऐसा मोड़ दे की ग्रीष्म में भी वह क्षीण होकर उस पहाड़ी की ओर न जाए अपितु इसी तट से सटकर बहे। तुमने अपना संकल्प तो बताया हर्ष और आवेग से मेरा गला रूध गया और मैंने तुझे अपने सीने से चिपका लिया। एक अद्‌भुत शीतलता से भर उठा हृदय।

"चलिए माँ, अब चला जाए। तुम उठ खड़े हुए थे मैंने पूछा था। शंकर तुम्हारी पाँव में छाले पड़े हुए हैं कैसे चलेगा तू? आ, तुझो मैं अपनी गोद में उठाकर ले चलूं। मैने अपनी दोनो भुजाएं आगे फैला दी।"१० माता आयम्बिा एवं गुरु शंकराचार्य के बीच के वार्तालाप से यह स्पष्ट होता है कि एक माँ और बेटे के बीच में कैसा वात्सल्य का संबंध होता है। जो अपनी माँ को तनिक भी कष्ट नहीं देना चाहते हैं। इसीलिए वह नदीतमा पूर्णा से प्रार्थना करते हैं कि वह नदी उस तट केवल ना सिमट करके रह जाए अपितु यह उनके गाँव से किनारे लगे सटा भी रहे ताकि उनके माँ के साथ-साथ अन्य गाँव की महिलाओं एवं बहनों को भी पानी लेने के लिए, स्नान करने के लिए कोई समस्या उत्पन्न ना हो।

"शंकर, वेदांत संबंधी गूढ़ातिगूढ़ शास्त्रीय रहस्यों को उद्‌घातिट करते समय तुम्हारे सम्मुख अपने जीवन के ये सारे प्रसंग अवश्य ही नृत्य करते रहे होंगे। तभी तो तुमने प्रारब्ध को व्याख्यायित करते हुए लिखा-

आत्मानं सततं जानन् कालं नय महायते। प्रारब्धमाखिलं भुंजन्नोद्‌वेगं कर्तुमर्हसि।।

विद्वान् व्यक्ति को अपने आत्मस्वरूप को जानते हुए बिना उद्‌विग्न हुए, संपूर्ण प्रारब्ध का भोग करते हुए समय बिताना चाहिए। प्रारब्ध भोग से भय करना उचित नहीं। पिछले जन्मों के कर्म के अनुसार ही प्रारब्ध का निर्माण होता है। परंतु सत्य का ज्ञान हो जाने अर्थात् आत्मज्ञान हो जाने पर प्रारब्ध की भी सत्ता समाप्त हो जाती है।"[११]

तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस में जिक्र किया है कि-

प्रारब्ध पहले रचा, पीछे रचा सरीर। तुलसी तू क्यों चिंता करें भज ले श्री रघुवीर।।

अर्थात् मानव जीवन के जो तीन प्रकार के कर्म उन्होंने बताए हैं। प्रारब्ध, संचित क्रियामाण कर्म। इन तीन कर्मों में प्रारब्ध कर्म हमारे पूर्व जन्म के संचित पुण्य प्रताप और पापों

का संचयन होता है। उसी के अनुसार मनुष्य को रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण की प्रवृत्तियाँ आगे अवतरित रूप में उसको मिलती हैं जिसके अनुसार जीव इस अलौकिक संसार में सुखों-दुखों का भागी बनता है। माता आयम्बिा कहती हैं कि अनेक कठिनाइयों और सुख-दुख के उतार-चढ़ाव का प्रभाव पाँच तत्व निर्मित देह पर पड़ता ही है। प्रौढ़ अवस्था के बाद कठिन तप के फल के रूप में तुम्हें अपनी गोद में पाना जहाँ हमारे लिए सुख का क्षण था वही मात्र तीन वर्षों के बाद ही तुम्हारे पिताजी का सदा के लिए बैकुंठ जाना दुखों का पहाड़ टूटने जैसा था।

"माँ, जो आत्मा में रमण करता है, वही राम है। योगी, जो आत्मतत्व का जिज्ञासु है, उसका पूरा जीवन ही रामायण है। उसका नायक राम वह स्वयं है। उसके चित्त की शांति ही सीता है, जिसका राग-द्वेष रूपी राक्षस हरण करते हैं और जिन्हें मारकर ही उसे सीता को वापस पाना है, परंतु बीच में मोहरूपी समुद्र है, जिसे बाँधे बिना पार नहीं जाया जा सकता। यह मोह ही अविवेक है। जब जीवन से अविवेक दूर होता है, तभी शुद्ध आत्मतत्व सीता-राम की तरह स्थित होता है, अभेद ब्रह्म का ज्ञान होता है माँ।"[१२] अर्थात् शंकराचार्य जी का मत है कि यह जो अद्वैतवाद ईश्वर एक है। इसकी परिकल्पना में आत्मा एक ही है और आत्मा प्रत्येक व्यक्ति के अंदर राम है। जो उस आत्म तत्व को अपने हृदय के भीतर बैठे हुए राम है और उसके चित्त का सुकून और शांति सीता जी है। जिसका हमारे शरीर के राग द्वेष रूपी राक्षस हरण करते हैं और जिन्हें मारकर उसे सीता का वापस लाना है अर्थात् मनुष्य से भौतिकता की देह में दोषों से व्याप्त शरीर है। काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य से दूर होकर ही सीता का वरण कर सकता है सीता को पा सकता है। अपने हृदय के अंदर भारतीय संस्कृति का यही एक लक्ष्य है कि हम अपने हृदय के राम के द्वारा अपने चरित्र की शांति सीता को अपने में प्रतिस्थापित करें।

निष्कर्ष

उपर्युक्त प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट होता है की सांस्कृतिक चेतना के प्रति एवं संस्कृति को भारत भूमि में प्रसारित करने के प्रति गुरु शंकराचार्य में कितनी लालित्य भावना थी। उन्होंने उसके लिए पृष्ठभूमि तैयार किया था। वे इसी संस्कृति स्थापना के लिए उन्होंने चार मठों की स्थापना की थी। भारत भूमि के चारों कोनों में इन मठों के माध्यम से विभिन्न भाषा भाषी लोग एक दूसरे के मनसा वाचक कर्मणा से संयुक्त रूप से रहे। ईर्ष्या, द्वेष, लोभ का भाव कम हो, संस्कृति का उत्थान हो, धर्म की स्थापना हो, परोपकार, दया करूणा, ममता सहानुभूति इत्यादि शब्दों जैसे मानव जीवन में अत्यधिक व्यवहार रूप में प्रयोग किए जाएं ताकि मानव

जीवन की जो शाश्वत मूल्य और उत्तरदायित्व उनकी पूर्ति के लिए एक अच्छे समाज का निर्माण हो सके। एक अच्छे राष्ट्र का निर्माण हो सके। वह केवल भारत भूमि की ही बात नहीं करते वे संपूर्ण विश्व की बात करते हैं। उसके कल्याण कामना की बात करते हैं। संपूर्ण जगत के प्राणि मात्र का हित चाहते हैं। ऐसी उनकी मनोकांक्षा है उस परिकल्पना को वे प्रतिस्थापित भी करते हैं। अपनी कल्पनाओं पर खरे भी उतरते हैं। वे भारतीय संस्कृति के संवाहक एवं विमर्शकर्ता के रूप में एक शीर्षक स्थान को प्राप्त करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. १ नीरजा माधव, अनुपमेय शंकर, विद्या विकास अकेडमी, नई दिल्ली, संस्करण २०१७, पृष्ठ-८
२ नीरजा माधव, अनुपमेय शंकर, विद्या विकास अकेडमी, नई दिल्ली, संस्करण २०१७, पृष्ठए८
३ नीरजा माधव, अनुपमेय शंकर, विद्या विकास अकेडमी, नई दिल्ली, संस्करण २०१७, पृष्ठ-९
४ संपा. डॉ. पी. के. वार्ष्णेय, लेफ्टिनेंट डॉ. प्रवेश कुमार, मूल्यों के विविध आयाम, नील कमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, २०२२, पृष्ठ ७१
५ संपा, डॉ. पी. के. वार्ष्णेय, लेफ्टिनेंट डॉ. प्रवेश कुमार, मूल्यों के विविध आयाम, नील कमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, २०२२, पृष्ठ ७२
६ नीरजा माधव, अनुपमेय शंकर, विद्या विकास अकेडमी, नई दिल्ली, संस्करण २०१७, पृष्ठ-२१
७ संपा. डॉ. धर्मेन्द्र कुमार, श्रीमद्भगवद्गीता, दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली प्रथम संस्करण, २०१३, पृष्ठ-९४
८ टीका, हनुमान प्रसाद पोद्दार, श्रीरामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर
९ नीरजा माधव, अनुपमेय शंकर, विद्या विकास अकेडमी, नई दिल्ली, संस्करण २०१७, पृष्ठ-८
१० नीरजा माधव, अनुपमेय शंकर, विद्या विकास अकेडमी, नई दिल्ली, संस्करण २०१७, पृष्ठ-३५
११ नीरजा माधव, अनुपमेय शंकर, विद्या विकास अकेडमी, नई दिल्ली, संस्करण २०१७, पृष्ठ-४५
१२ नीरजा माधव, अनुपमेय शंकर, विद्या विकास अकेडमी, नई दिल्ली, संस्करण २०१७, पृष्ठ-५९

-शोधार्थी हिन्दी अध्ययनशाला
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

लोकधारा-३ काव्यसंग्रह में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप

–श्री मनोजचन्द्र तिवारी

किसी भी राष्ट्र की आत्मा उसकी सभ्यता और संस्कृति में निवास करती है। ईश्वर के प्रति प्रेम और देश के प्रति सम्मान, समर्पण व भावना ही राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देती है। संसार का हर वह व्यक्ति जिसमें मानव और मानवता के प्रति यदि थोडा सा भी अनुराग होता है तो वह देश में हो रहे अन्याय के विरुद्ध प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपनी प्रतिक्रिया अवश्य देता है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा साहित्य भूषण सम्मान से सम्मानित डॉ० महेश 'दिवाकर' ने अपनी काव्य संग्रह 'लोक भाषा' में नई कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप को प्रस्तुत किया है। डॉ० महेश 'दिवाकर' के संपूर्ण काव्य ग्रंथों में सर्वत्र राष्ट्रीय चेतना परिलक्षित होती है। उनके काव्य संग्रह लोकधारा में राष्ट्र प्रेम, राष्ट्र उत्थान, राष्ट्र कल्याण आदि के भाव छिपे हुए हैं। डॉ० महेश 'दिवाकर' एक समर्थ लेखक तथा कवी होने के साथ-साथ हिंदी के सेवा निवृति आचार्य और प्रतिष्ठित साहित्यकार भी हैं। उन्होंने हिंदी के विविध विधाओ में अनेक कृतियों की रचना की है। अंतर्राष्ट्रीय साहित्य कला मंच के संस्थापक अध्यक्ष के पद पर आसीन डॉ० महेश 'दिवाकर' जी ने देश विदेश में हिंदी के उत्थान और संवर्धन के प्रचार प्रसार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने अपने काव्य संग्रह लोकधारा में राष्ट्र के प्रति प्रेम तथा अत्यचार, अन्याय तथा शोषण के विरुद्ध विगुल बजाया है। जब हम अपने अहंकार में आकर असंगत तथा असत्य बातों का समर्थन करते हैं तो सत्य की प्रतीति कहीं न कहीं कडवी हो ही जाती है। हमारा साहित्य और जीवन दर्शन कभी भी हमें इस बात के लिए प्रेरित नहीं करता कि हम अन्याय और शोषण का साथ दें। हमारा देश भारत वही राष्ट्र है, जिसकी रक्षा के लिए अनगिनत वीर-वीरांगनाओ ने अपने प्राणों की हँसते-हँसते बलि दे दी थी, पर अपने देश के सम्मान पर कभी और आंच नहीं आने दी। यह वही राष्ट्र है जिसमें कवियों ने अपने साहित्य में अपने जीवन के सुख-दुःख का वर्णन न करके राष्ट्र के उत्थान के लिए अपनी लेखनी चलाकर निरंतर क्रांति का बिगुल बजाया है लेकिन वर्तमान में हम देखते हैं कि देश के बहुत सारे साहित्यकार स्वतंत्र भारत में अपने इस महान परम्परागत दायित्व को भूल गए हैं। समझ में नहीं आता कि ये समय का कैसा परिवर्तन है कि धीरे-धीरे लोगों के ह्रदय से राष्ट्रीय सोच का ह्रास होता जा रहा है। देश का भविष्य और उन्नति आज की युवा पीढ़ी पर निर्भर करती है। जिस देश में युवाओं की संख्या अधिक होती

है, उस देश में विकास का स्तर भी बड़ी तेजी के साथ बढ़ता है, क्योकि नयी और सकारात्मक सोच के साथ देश की प्रगति में यदि कोई योगदान दे सकता है तो वह हमारे राष्ट्र की युवा पीढ़ी ही है। लोकधारा-३ काव्य धारा में कवी ने वर्णित किया है कि आज की पीढ़ी को पुनः जागृत करने का, उसके मन में देशभक्ति की विद्युत् तरंग को उठाने का, उसके रोम रोम में राष्ट्र के प्रति उत्सर्ग की भावना जगाने का समय आ गया है। आज की नयी पीढ़ी को इस महान दायित्व का निर्वहन करना ही होगा। तभी हमारे देश का भविष्य उज्जवल हो पायेगा। निम्न पंक्तियों में नई पीढ़ी को समझाते हुए कवि ने लिखा है-

नई पीढ़ी को के लोगो!!
तुम देख नहीं रहे?
सारी दुनिया
शस्त्रों अस्त्रों के ढेर पर
गुमसुम सी खड़ी है।
जिस दिन प्रगति के नाम पर
मानव हृदय में
प्रतिशोध की चिंगारी जलेगी,
सारी दुनिया को उसी क्षण
तहस नहस कर देगी।
तुम्हारी सुरक्षा के सारे कवच
धरे के धरे रह जायेगें।
सावधान!
तुम वही दिन देखने
पैदा हुए हो अपनी
सुरक्षित आरक्षित धरती पर!'

डॉ० महेश 'दिवाकर' ने अपने विभिन्न काव्य संग्रहों में देश पर अनमोल कविताएं लिखकर देशवासियों के मन में राष्ट्रीय एकता की भावना को जागृत करने का एक माध्यम तैयार किया है। 'लोकधारा-३' में प्रस्तुत कविताएं देश की संस्कृति, सभ्यता, राष्ट्रीयता एवं सुंदरता का बोध कराती हैं। भारतीय संस्कृति पूरे विश्व में एक अलग और अनूठा स्थान रखती है। राष्ट्र की प्रतिष्ठा देश की एकता से बनती है, जो पूरे विश्व में एक नई पहचान लेकर उभरती है और यही पहचान हमें इन कविताओं के माध्यम से मिलती है।

आओ!

तोड़ दें, मजहब की व्यापकता दीवारें
जिनमें कैद है-
मानवता की हंसिनी।
आओ!
कर दें, उसे मुक्त!
बिचरने दें, उसे स्वच्छंद!
उसे देखकर ही फूटेगें
मेरे कंठ से गजल, गीत, लोक कविता
और नव छंद।
इनके शब्द-शब्द की मधुर ध्वनि
संपूर्ण धरा को
कर देगी रस से सराबोर।
चारों तरफ छा जाएगी।
हर्ष और आनंद की हिलोर
मन की कोयलिया
कर उठेगी गान-
"मेरा भारत देश महान।"

कवि ने अपने इस काव्य संग्रह में स्पष्ट किया है कि आज प्रेम की कविताओं की नहीं बल्कि सिंहनाद करने वाली और रस प्रधान कविताओं की, आत्मा और तेज-बल को झकझोर कर रख देने वाली कविताओं की, देश को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने वाली कविताओं की, युवा पीढ़ी के अन्दर जोश जगाने वाली कविताओं की आवश्यकता है तभी देश का हर व्यक्ति जागृत हो पाएगा। युगोंदृयुगों से लेकर आज तक जब कभी भी देश में विकट परिस्थिति आयी हैं तब केवल कुछ लोगों ने ही अन्याय का विरोध किया है। अन्याय का प्रतिकार करना तथा अन्याय के विरुद्ध एक चट्टान की भाँति खड़े हो जाना ही सामाजिक दायित्व है। राष्ट्र के प्रति दायित्व किसी भी भेदभाव को नहीं जानता है बल्कि इस दायित्व के निर्वहन की भावना जब भी किसी व्यक्ति के अन्दर प्रकट हो जाती है, तब वह व्यक्ति देश, काल, परिवार, समाज, जाति, धर्म, क्षेत्र, वर्ण और भाषायी इन सभी बन्धनों को तोड़कर देश के प्रति समर्पित होकर सदैव सत्य का ही पक्ष लेता है। ऐसे क्रांतिकारी व्यक्तित्व की आज देश को आवश्यकता है। अपने राष्ट्र के प्रति समर्पित हो जाना, यह जिम्मेदारी किसी एक व्यक्ति की नहीं है बल्कि भारत देश में जन्मे प्रत्येक व्यक्ति के मन में यह भाव आना चाहिए की हमारा राष्ट्र हमसे ही है, हमारे

कर्त्तव्य राष्ट्र की सुरक्षा, एकता और निर्माण सब में सर्वोपरि होना चाहिए कि हमारा राष्ट्र हमसे ही है, हमारा कर्तव्य राष्ट्र की सुरक्षा, एकता और निर्माण सब में सर्वोपरि होना चाहिए। हमें ऐसे लोगों का नामों-निशान मिटा देना चाहिए जो राष्ट्र के साथ गद्दारी करते हैं तथा राष्ट्र की अस्मिता को दांव पर लगा देते हैं।

"नहीं चाहिए मुझे ऐसी आजादी,
जिसमें प्यार, ममता, त्याग
और अपनापन लिए
सहज एवं उदारतापूर्ण,
निश्चल समर्पण की भावना न हो!
नहीं चाहिए मुझे ऐसी आजादी,
जो असत्य पर आधारित हो
जो दिलों को दिलों से बाँट दे,
जो दो दिलों के बीच नफरत की
ऊंची प्राचीर खड़ी कर दे!
नहीं चाहिए मुझे ऐसी आजादी!
ऐसी आजादी का स्वर्ग
नहीं चाहिए! कतई नहीं चाहिए!!"

कवि ने लोकधारा-३ काव्य संग्रह में सत्य के इसी संघर्ष को विविध भाव भंगिमाओ और जीवन रूपी पथ पर भोगे हुए यथार्थ की अनुभूतियों को अपने लेखन के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उनके शब्दों के रंगों से जो भी चित्र बना है वह चित्र किसी मुख्य व्यक्ति के लिए नहीं है बल्कि हर साधारण व्यक्ति जो अपने राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निभाने के लिए जागरूक हैं उन सबके लिए है, यह शब्द चित्र हम सबके लिए है।

यह बात हम सभी को भली भांति समझ लेनी चाहिए कि न्याय की रक्षा शक्ति के द्वारा ही संभव हो सकती है। '२१वीं सदी का भारत' यह शब्द मस्तिष्क में आते ही भारत की एक अलग छवि उभर कर आती है। २१वीं सदी की बात पर लेखक ने तंज कसा है-

"यार! २१वीं सदी की बात छोड़ो!
अभी बिजली क्षति की प्रगति की सोचो!
कितनी प्रगति हुई है
जरा अनुमान तो लगाओ!
आप जिस कार्य को नहीं करते

आपके मित्र और साथी
उसकी असफलता तुम्हारे माथे हैं जड़ते!
यदि कर लिया यह कार्य तो सफलता का पूरा श्रेय
स्वयं लेने हैं अड़ते!
अर्थात साया सा है आपका
पूरा पीछा हैं करते!
वीसवीं शती का है यह हाल है।
२१वीं सदी क्यों चुप रहेगी,
क्या मजाल है"

देश की समृद्धि एवं विकास हेतु संकीर्ण मनोवृतियों वह स्वार्थपरता का परित्याग कर राष्ट्रीय चेतना का समावेशन परम आवश्यक है। भारत की विशेषता उसकी अनेकता में एकता से है। भारत एक सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई विविधता वाला देश है। राष्ट्रवाद ही वह धागा है जो लोगों को उनके विभिन्न सांस्कृतिक जाती पृष्ठभूमि से संबंधित होने के बावजूद एकता के सूत्र में एक साथ बांधता है यह कश्मीर से कन्याकुमारी तक सभी भारतीयों को एकजुट करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है एक सच्चा देशभक्त वह है जो अपने देश की स्थिति सुधारने में जितना हो सके उतनी कड़ी मेहनत कर अपना पूर्ण योगदान दे सके एक सच्चा देशभक्त न केवल अपने देश के निर्माण की दिशा में काम करता है बल्कि उसके आसपास के लोगों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है आज के समय देशभक्ति का मतलब सिर्फ देश के लिए जान कुर्बान कर देना ही नहीं होता है बल्कि देश और देशवासियों की भलाई के लिए जिम्मेदार तरीके से कार्य करना भी उसी प्रकार की सच्ची देशभक्ति है इसका मतलब सिर्फ विचारों को ग्रहण करना नहीं अपने बल्कि की अपने विचारों और रैलियों को रखना भी होता है एक देश को इसके निवासियों द्वारा ही एक सशक्त राष्ट्र बनाया जा सकता है राष्ट्रीय चेतना के अभाव में किसी भी राष्ट्र को बड़ी आसानी से तोड़ा जा सकता है।

भारत एक विशाल विस्तृत सागर के समान हैं जिस प्रकार अनेक नदियां भाकर सागर में जा मिलती हैं और उसकी पृथकता मिट जाती है उसी प्रकार विविध वर्णों धर्म जातियों विचारधाराओं के लोग भारतीयता की भावना से बनाकर एक हो जाते हैं जिस प्रकार अनेक पेड़ पौधे मिलकर एक वन प्रदेश का निर्माण करते हैं उसी प्रकार विविध मतावलंबियों की एकता से ही भारत का निर्माण हुआ है कवि ने लोकधारा तीन काव्य संग्रह में स्पष्ट किया है कि आज का युग राम और कृष्ण के आदर्शों पर चलने वाला युग नहीं रहा आज मानवीय

मूल्यों के खनन और सिद्धांत हीनता का विषाक्त कलयुग आ गया है राम और कृष्ण के आदर्शों को आज घर और पुस्तकालय की अलमारी में कैद कर दिया गया है।

काश! कोई चतुर केवट होता,
जो तुम्हारे हम की नौका को
किनारे लगा देता!
तुम तो अहंकार के जीते जागते
पुतले हो!
तुम्हारी गर्दन तक पानी
चल चुका है!
तुम्हारा डूबना अब सुनिश्चित है!

डॉ० महेश 'दिवाकर' कवि, लेखक, कहानीकार एवं नाटककार आज अनेक रूप में हिंदी साहित्य में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं वह योग देश समाज और मानव की जन समस्याओं को उठाते हैं लोकधारा तीन काव्य संग्रह में कवि ने स्पष्ट किया है कि राष्ट्र में चेतना भरने के लिए हमें अपने निजी स्वार्थ का बलिदान करना ही होगा तभी हम राष्ट्र के लिए परोपकार का कार्य कर सकते हैं दूसरों के हित का ध्यान रखकर ही हम राष्ट्र के हित के लिए कार्य कर सकते हैं मनुष्य की सोच सकारात्मक होनी चाहिए सकारात्मक सोच ही स्वस्थ मस्तिष्क और स्वस्थ शरीर प्रदान कर सकती है

प्रत्येक वर्ष १५ अगस्त औ,
२६ जनवरी को,
हम प्रतिज्ञा करते हैं,
शपथ लेते हैं,
प्यारे तिरंगे के नीचे -
आजाद सुभाष गांधी
नेहरू प्रभृति देशभक्तों के
आदर्श पर चलते हुए
अपनी स्वाधीनता
औ गणतंत्र को
नित नवीन बनाएं
रखने की सोल्लास!
मेरे देश के सपूतों!

भावी भारत के कर्णधारों!
भारत माता की जय!
अमर शहीदों की जय!
हमारी आजादी अमर रहे!!

आज पाखंडियों, धर्माचार्यों ने अपने अनुसार धर्म को अनेक पंथ में विभाजित कर दिया है। राष्ट्र की चेतना तभी सजीव होती है जब धर्म का समन्वय हो। राष्ट्रीय चेतना निस्वार्थ भाव में छिपी होती है। लोकधारा-३ काव्य संग्रह के माध्यम से कवि ने धार्मिक आडंबर, सामाजिक विषमता आदि को सामने रखा है -

''देश की चिंगारियां,
नित बढ़ती जा रही हैं,
इंसानियत की लाश पर,
हिंसा के कागा विचरते
बहुत खुश है झूठ पाकर
मिट गए सिद्धांत सारे,
तोड़ती नदियां किनारे,
सिंधु कैसा फूलता है,
आदर्श अपना भूलता है,
डूबता आदर्श हैं!
प्रगति के नाम पर
अब अपकर्ष ही अपकर्ष है?''

निस्वार्थ भाव मानव के मन में कैसे जागृत हो, इसका मार्ग हमें हमारे धर्म-ग्रंथ, सभ्यता-संस्कृति, संस्कार और वैदिक परंपरा बतलाती है। भाषा तथा परिवेश भी राष्ट्र में चेतना का विकास करता है। हिंदी साहित्य के अनेक कवियों ने राष्ट्रीयता की भावभूमि पर अपना काव्य रचकर नवजागरण का संदेश दिया, यह कहा जाता है कि राष्ट्रीय भावना राष्ट्र की प्रगति का मूल मंत्र है और ये सच है कि आधुनिक काव्य में राष्ट्रीयता का भाव प्रत्येक भाषा में समाविष्ट है। किसी भी राष्ट्र रूपी वृक्ष की छाया में अनेक पंथ-धर्म और भाषाएं पल्लवित और पुष्पित होती हैं। एक राष्ट्र में अनेक धर्म धर्म हो सकते हैं, किंतु व्यक्ति की मूल भावना और सांस्कृतिक विरासत एक ही होगी। मानव यदि स्वयं को जान जाए तो उसकी सोच बदल सकती है और सोच बदलने से ही युग परिवर्तन होता है। कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से न केवल अतीत की गौरव गाथा का बखान किया है, अपितु तत्कालीन सामाजिक

तथा राजनीतिक स्थिति पर भी दृष्टिपात किया है। वे राष्ट्र की वाणी में बोलते हैं उनकी रचनाओं में राष्ट्रवादी चेतना मुखरित हुई है हम सभी को अपने देश अपनी मिट्टी, अपनी संस्कृति और अपने भारतीय होने पर अभिमान होना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. डॉ० महेश 'दिवाकर' लोकधारा-३ काव्य-संग्रह, अन्याय के विरुद्ध, नई पीढ़ी, पृष्ठ १०
२. डॉ० महेश 'दिवाकर' लोकधारा-३ काव्य-संग्रह, अन्याय के विरुद्ध, पृष्ठ २१
३. डॉ० महेश 'दिवाकर' लोकधारा-३ काव्य-संग्रह, आजादी पृष्ठ ३०९
४. डॉ० महेश 'दिवाकर' लोकधारा-३ काव्य-संग्रह, २१वीं साड़ी का कमल, पृष्ठ ४४
५. डॉ० महेश 'दिवाकर' लोकधारा-३ काव्य-संग्रह, अन्याय के विरुद्ध, पृष्ठ ९३
६. डॉ० महेश 'दिवाकर' लोकधारा-३ काव्य-संग्रह, संदेश, पृष्ठ २४१
७. डॉ० महेश 'दिवाकर' लोकधारा-३ काव्य-संग्रह, प्रगति के नाम पर, पृष्ठ ३११

-शोधार्थी (हिन्दी-विभाग)
वेंकटेश्वरा विश्वविद्यालय, गजरौला
अमरोहा (उ०प्र०)
डॉ० स्नेहलता गोस्वामी
(पी-एच०डी०)
वेंकटेश्वरा विश्वविद्यालय, गजरौला
अमरोहा (उ०प्र०)

⊙

शेखर जोशी की कहानियाँ और सामाजिक यथार्थ

–डॉ० लोङ्जम रोमी देवी

नई कहानी आंदोलन को जिन कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से साहित्य जगत के मानचित्र पर अंकित किया, शेखर जोशी उनमें अग्रगण्य हैं। शेखर जोशी की महत्ता और विशिष्टता इस दृष्टि से बढ़ जाती है कि उन्होंने आत्मकेंद्रिकता के स्थान पर स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक यथार्थ को अपनी कहानियों में स्वर प्रदान किया। अपने समकालीन नई कहानी आंदोलन से संबद्ध दूसरे कहानीकारों से इतर शेखर जोशी ग्रामकथा और शहरी मध्यवर्गीय जीवन के चित्रण के बरक्स जहाँ एक तरफ पहाड़ी जनजीवन के कटु यथार्थ को उजागर करते हैं वहीं दूसरी ओर उद्योग जगत एवं कल-कारखानों के संघर्षमय जीवन तथा पर्वतीय जीवन की सच्चाइयों को अपनी कहानियों का वर्ण्य विषय बनाते हैं। 'कोसी का घटवार', 'साथ के लोग', 'हलवाहा' और 'नौरंगी बीमार है' शेखर जोशी के चर्चित कहानी संग्रह हैं। 'मेरा पहाड़' शीर्षक से शेखर जोशी की पहाड़ी जीवन संबंधी कहानियाँ पुस्तकाकार संकलित हैं। शेखर जोशी की कहानी 'दाज्यू' को १९५५ में धर्मयुग द्वारा आयोजित कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। उसके बाद उन्होंने हिंदी कहानी को एक से बढ़कर एक कहानियाँ दी। उनकी चर्चित कहानियों में 'दाज्यू' के साथ-साथ 'कोसी का घटवार', 'बदबू', 'नौरंगी बीमार है', 'गोपुली बुबु', 'किम करोमि जनार्दन' आदि का उल्लेख किया जा सकता हैं। शेखर जोशी की कहानियाँ जहाँ एक तरफ अपने कथानक की नवीनता के कारण उल्लेखनीय हैं वही दूसरी ओर शिल्प की दृष्टि से उनकी कहानियाँ अत्यंत सहज और सरल हैं। भाषा की सहजता और संप्रेषणीयता की दृष्टि से शेखर जोशी की कहानियाँ विशेष रूप से हमारा ध्यान आकर्षित कराती हैं।

शेखर जोशी नई कहानी आंदोलन के ऐसे अनूठे कहानीकार हैं जिनके यहाँ पर्वतीय जनजीवन का यथार्थ समग्रता में चित्रित हुआ है। यशपाल, शैलेश मटियानी, विद्यासागर नौटियाल, हिमांशु जोशी, बटरोही आदि कहानीकारों के यहाँ भी पहाड़ी जनजीवन के यथार्थ को देखा जा सकता हैं। शेखर जोशी अपने समकालीन कहानीकारों से इस दृष्टि से अलग है कि उनके यहाँ पहाड़ की समस्याएँ और वहाँ के जनजीवन का यथार्थ ही सिर्फ चित्रित नहीं

हुआ है वरन् पहाड़ के व्यक्ति में जो स्वाभिमान और गौरवबोध है वह भी उनकी कहानियों में दिखाई पड़ता हैं। शेखर जोशी ने अपनी कहानियों में पहाड़ के सौंदर्य को उजागर करने के स्थान पर पहाड़ी समाज के खुरदरे यथार्थ को प्रकाशित किया है। शेखर जोशी की पहाड़ केंद्रित कहानियों में 'दाज्यू', 'बोझ', 'हलवाहा', 'गोपुली बुबु', 'समपर्ण', 'सिनारियों', 'कोसी का घटवार', 'गलता लोहा', 'व्यतीत', 'देबिया', 'किं करोमि जनार्दन', 'तर्पण', 'आदमी का डर', 'रंगरूट', 'रास्ते', 'कथा-व्यथा' और 'परिक्रमा' आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सका हैं। उनकी पहाड़ी जन-जीवन को केंद्र में रखकर रची गई कहानियाँ जहाँ एक तरफ पहाड़ के कठिन और त्रासद यथार्थ को सूक्ष्मता के साथ उजागर करती हैं, वहीं दूसरी ओर पहाड़ी लोगों के स्वाभिमान एवं उनकी चारित्रिक विशेषताओं को भी प्रकाशित करती हैं। पहाड़ के लोग हँसमुख व्यक्तित्व वाले, मिलनसार, सहज विश्वासी और आत्मसम्मान के प्रति सजग व्यक्तित्व वाले होते हैं। शेखर जोशी ने अपनी अनेक कहानियों इसे प्रकाशित किया है- ''नई कहानी आंदोलन के प्रतिष्ठित कथाकार शेखर जोशी की कहानियाँ जादुई शब्द-संयोजन व प्रायोजित अभियानों का शिकार बने पहाड़ी जनजीवन को बहुत सारे आवरणों से मुक्त करने का काम करती हैं। वे सैलानियों के नजरियें से नहीं बल्कि पहाड़वासियों के नजरियें से वहां के जीवन के सुखद और दुखद पक्षों तथा उसके यथार्थ की भीतरी परतों को हमारे सामने उजागर करने का काम करती हैं। उनमें टूटते परिवार, बेरोजगारी, गरीबी तथा जातिगत उत्पीड़न के कहीं खिले हुए, तो कहीं उदास चित्रों के विविध रंग समाहित हैं।''[१] इसके साथ ही शेखर जोशी ने पहाड़ी परिवेश को अपनी कहानियों में जीवंतता प्रदान की। 'सिनारियों' कहानी की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं ''वह पत्थर की दीवारों और पथरीली प्लेटों की ढलवाँ छत वाला छोटा सा घर था। निचले खंड में एक रसोईघर और उसके पिछवाड़े ढोर पशुओं की कोठरी थी। एक ओर बनी हुई सीढ़ियों से ऊपर पहुँचने पर छोटा बैठका और उसके पीछे एक ओर छोटी कोठरी थी जहाँ कोने में लाल मिट्टी से पुते हुए छोटे चबूतरे पर कुछ मूर्तियाँ और ताँबे-पीतल के पूजा के बर्तन रखे हुए थे।''[२] शेखर जोशी की 'बोझ' कहानी पहाड़ियों के स्वाभिमान को तो दिखाते ही है साथ ही साथ यह भी उजागर करती है कि पहाड़ी बुद्धू नहीं होते है वे सामने वाले की चालाकियों को अच्छे से समझते है। मैदान से पहाड़ों में आए वे सेलानी पहले तो 'बोझ' कहानी के नायक घोड़ियाँ के स्वाभिमान को आहट कर देते है और फिर पैसे का लालच देकर उससे काम करवाना चाहते है तो वह बिलकुल ही मना कर देता है। घोड़ियाँ फिर इन सेलानियों को अपना सामान स्वयं ले जाते हुए देखता है कहानी की पंक्तियाँ देखने योग्य हैं ''कलवर्ट की मुंडेर पर बैठा वह देर तक उन्हें लदे फंदे, पसीने से

लथपथ जाते हुए देखता रहा और फिर अपने टट्टू की गर्दन पर हाथ रखकर गाँव की ओर लौट गया। बहुत दिनों बाद आज उसने अपने आपको हल्का महसूस किया था।''[३] निश्चित ही शेखर जोशी की यह कहानी पहाड़ के व्यक्ति के आत्मगौरव और स्वाभिमान को प्रकट करती है। बाहर से आनेवाली सेलानी पहाड़ के अनिंद्य सौंदर्य को देखने के लिए आते हैं। वे वहाँ के संघर्ष और वहाँ रहनेवाले व्यक्तियों के स्वाभिमान का आकलन नहीं कर पाते है। इसमें कोई संदेह नहीं कि पहाड़ सुंदर होते है और दूर से देखने पर पहाड़ और सुंदर नजर आते है। पहाड़ के सौंदर्य को प्रकाशित करती हुई उनकी कहानी की निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं ''हिमालय का ऐसा विस्तृत और अलौकिक फलक उसने पहले कभी नहीं देखा था। आसमान साफ़ था, अस्त होते हुए सूर्य का आलोक किन्हीं अदृश्य दिशाओं से आकर उस संपूर्ण हिम विस्तार को सिंदूर आभा से भर गया था। धीरे-धीरे वह सिंदूरी आभा बैंगनी रंग में परिवर्तित होने लगी और पर्वत श्रृंखला की सलवटें गहरी श्यामल रेखाओं में अपनी पहचान बनाने लगी थी।''[३] शेखर जोशी की ये पंक्तियाँ न केवल उनकी कथाभाषा का साक्ष्य उपस्थित करती हैं वरन् नई कहानी के भाषिक वैशिष्ट्य को भी रेखांकित करती हैं।

शेखर जोशी के संदर्भ में यह भी सच है कि उनकी कहानियाँ न केवल पहाड़ी जन जीवन के यथार्थ को उजागर करती हैं वरन् समकालीन सामाजिक विसंगतियों की भी उन्हें गहरी परख है। उनकी गणना ऐसे कहानीकारों में की जाती है जिनके यहाँ वैचारिक प्रतिबद्धता लक्षित की जा सकती है। शेखर जोशी रचनात्मक लेखन को समाज सापेक्ष प्रक्रिया मानते हैं। वे यह भी मानते हैं कि एक लेखक को दूसरे लेखक से अलग करने में विचारधारा अथवा प्रतिबद्धता की भी भूमिका है। इस संदर्भ में उनकी पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं ''रचनात्मक लेखन एक सापेक्ष प्रक्रिया है। मनुष्य के मानसिक संस्कार, विभिन्न सामाजिक स्थितियों का दबाव, व्यक्तिमन का अहं, निजी अस्तित्व की पहचान का आग्रह, राग-विराग, भावनात्मक संवेग, संवेदन-क्षमता और निजी अनुभवों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देख पाने की दृष्टि कई ऐसे कारक हैं जो मिलकर संवेदना को रचना तक पहुँचाने में सहायक होते हैं या उसका कारण बनते हैं। मूलतः ये परिवेशगत स्थितियाँ ही हैं जो एक रचनाकार को दूसरे रचनाकार से भिन्न धरातल पर आंदोलित करती हैं।''[५] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शेखर जोशी समकालीन सामाजिक जीवन की विसंगतियों और परिवेशगत यथार्थ की गहरी परख रखने वाले कहानीकार हैं। उनकी कहानियाँ मनुष्य जीवन के दैनंदिन संघर्ष और जीवन एवं जगत से जुड़ी हुई विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं को संपूर्णता में रूपायित करती हैं। इस दृष्टि से उनकी परवर्ती दौर की कहानियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों में 'नौरंगी बीमार है', 'डांगरी

वाला' और 'आशीर्वचन' कहानियों की चर्चा की जा सकती हैं। शेखर जोशी की कहानियों की इसी विशेषता की तरफ संकेत करते हुए प्रतिष्ठित कथालोचक मधुरेश उचित ही लिखते हैं ''परिवेशगत विसंगतियों और विरूपताओं को केंद्र में रखकर शेखर जोशी ने परवर्ती काल में भी पर्याप्त संख्या में कहानियाँ लिखी हैं। इन कहानियों की अंतर्वस्तु का दायरा अलबत्ता कुछ बड़ा हुआ है। कभी इन कहानियों में वह पूँजीवादी के सर्वग्रासी दैत्य की विकरालता का संकेत देते हैं तो कभी उच्चतर वर्ग की स्त्रियों में काम के अभाव से पैदा हुई रिक्ति का अंकन भी खासे विश्वसनीय और संवेदनशील ढंग से करते हैं। इन कहानियों में परिवेश की विरूपताओं के प्रति एक असंलग्न और असामाजिक रवैए की आलोचना करके पक्षधरता और सामाजिक हिस्सेदारी पर जोर देते हैं।''[६] मधुरेश की ये पंक्तियाँ इस बात को प्रमाणित करती हैं कि शेखर जोशी वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध कहानीकार है और उनकी कहानियाँ गहराई से समाज से संपृक्त हैं।

दाज्यू' कहानी न केवल हिंदी वरन् भारतीय भाषाओँ की कहानियों में अपनी मार्मिकता और संवेदनशीलता के कारण रेखांकित करने योग्य है। यह कहानी मानवीय संबंधों और मानव मन की निर्ममता को उजागर करने वाली सशक्त कहानी है। यह कहानी इस तरफ संकेत करती है कि कैसे छोटे-छोटे लाभ अथवा स्वार्थ के लिए व्यक्ति संबंधों को भुलाने की कोशिश करता हैं। 'दाज्यू' कहानी का कथानक जहाँ बहुत छोटा है वहीं इसमें निहित संदेश बहुत बड़ा है। यह कहानी नई कहानी की उन कुछ कहानियों में से है जिसे नई कहानी की प्रतिनिधि कहानी कहा जा सकता है। निर्मल वर्मा की 'परिंदे', शिवप्रसाद सिंह की 'दादी माँ', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' और अमरकांत की कहानी 'डिप्टी कलेक्टरी' की भांति ही 'दाज्यू' कहानी का कथानक छोटा है किंतु क्षरित हो रहे मानवीय संबंधों को यह कहानी कुशलता के साथ उजागर करती हैं। 'दाज्यू' कहानी का कथानक सिर्फ इतना है कि पहाड़ का कोई बालक शहर के किसी होटल में काम करता है और एक दिन जगदीश नामक किसी व्यक्ति से उसकी मुलाकात होती है और जगदीश नामक यह व्यक्ति भी पहाड़ का रहने वाला है। जगदीश द्वारा थोड़ा प्रेम से बात करने पर पहाड़ी बालक के मन में उनके प्रति आत्मीयता और परिचय का भाव जाग जाता है। इस कारण वह जगदीश बाबू को 'दाज्यू' अर्थात बड़े भाई के रूप में संबोधित करने लगता है।शेखर जोशी अपने इस कहानी में बहुत सुंदरतापूर्वक मध्यवर्गीय व्यक्ति की कुंठाओं और उसके व्यक्तित्व को चित्रित करते हैं। पहाड़ी बालक मदन द्वारा बार-बार दाज्यू कहे जाने पर जगदीश बाबू एक दिन भड़क उठते है। इस संदर्भ में कहानी की पंक्तियाँ देखने योग्य हैं ''दाज्यू शब्द की आवृत्ति पर जगदीश बाबू के मध्यवर्गीय

संस्कार जाग उठे-अपनत्व की पतली डोरी 'अहं' की तेज धार के आगे न टिक सकी। ''दाज्यू, चाय लाऊँ?चाय नहीं, लेकिन यह दाज्यू-दाज्यू क्या चिल्लाते रहते हो दिन-रात, किसी की 'प्रेस्टिज का ख्याल भी नहीं है तुम्हें?'' जगदीश बाबू का मुँह क्रोध के कारण तमतमा गया, शब्दों पर अधिकार नहीं रह सका। मदन 'प्रेस्टिज' का अर्थ समझ सकेगा या नहीं, यह भी उन्हें ध्यान नहीं रहा, पर मदन बिना समझाए ही सबकुछ समझ गया था।''[७] ये पंक्तियाँ यह सिद्ध करती है कि नई कहानी की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताए मानवीय संबंधों का क्षरण और कथानक का ह्रास इस कहानी में देखा जा सकता है। दाज्यू कहानी पहाड़ी बालक के स्वाभिमान को भी प्रदर्शित करती हैं।

नई कहानी के अपने समकालीन अन्य कहानीकारों की तुलना में शेखर जोशी की विशिष्टता इस तथ्य में निहित है कि उनकी अनेक कहानियाँ उद्योग एवं कल कारखानों में काम करने वाले कामगरों पर केंद्रित है। ये कहानियाँ कारखानों में काम करने वाले मजदूरों के जीवन के यथार्थ को सच्चाई के साथ उजागर करती हैं। शेखर जोशी अपनी कहानियों में औद्योगिक परिवेश के यथार्थ को सफलतापूर्वक इसलिए उजागर कर पाते है क्योंकि वे स्वयं भारत सरकार के अंतर्गत आयुध कारखाने से अनेक वर्षों तक जुड़े रहे हैं। औद्योगिक जीवन की सच्चाइयों और उसके कटु यथार्थ को उजागर करने वाली कहानियों में 'बदबू', 'उस्ताद', 'मेंटल' और 'सीढ़िया', 'नौरंगी बीमार है' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। शेखर जोशी की कहानियों के इस वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालते हुए प्रतिष्ठित आलोचक डॉ० गोपाल राय उचित ही लिखते हैं ''औद्योगिक परिवेश से जुड़ी अन्य कहानियों में कल-कारखानों के उस यथार्थ का चित्रण किया गया है, जिनकी तरफ प्रायः समकालीन या पूर्ववर्ती कहानीकारों का ध्यान नहीं गया था। 'आखिरी टुकड़ा' में औद्योगिकरण की बदलती मानसिकता का चित्रण किया गया है। पुरानी पीढ़ी के किसान का जमीन के टुकड़े के प्रति भावनात्मक लगाव नयी पीढ़ी के मोटर मैकेनिक के लिए कोई अर्थ नहीं रखता। औद्योगिकरण जमीन की संस्कृति को ही निगल जाता है। 'मेंटल' कारखानों में व्याप्त भ्रष्टाचार की कहानी है। मिस्त्री स्तर के अधिकारी कारखानों से अपने लिए तरह-तरह की चीजें बनवाते हैं और मजदूरों (कारीगरों) पर चोरी का इलजाम थोपते हैं।''[८] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शेखर जोशी नई कहानी आंदोलन से संबद्ध एकमात्र कहानीकार हैं जिनके यहाँ औद्योगिक जगत एवं कारखानों के जीवन का यथार्थ लक्षित किया जा सकता है।

नई कहानी आंदोलन से संबद्ध कहानीकारों ने प्रेम को केंद्र में रखते हुए अनेक अविस्मरणीय कहानियाँ हिंदी पाठक जगत को प्रदान कीं। इन कहानियों में निर्मल वर्मा की

'परिंदे', फणीश्वरनाथ रेणु की 'तीसरी कसम' और शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। शेखर जोशी द्वारा रचित 'कोसी का घटवार' हिंदी की अत्यंत चर्चित प्रेम कहानी है और इसी नाम से उनका पहला संग्रह १९५८ में प्रकाशित हुआ। 'कोसी का घटवार' कहानी के केंद्र में गोसाई और लछमा नामक चरित्र है जिनके सहारे शेखर जोशी प्रेम के दर्शन एवं मानवीय जीवन में निहित रागात्मकता को उजागर करते हैं। यह कहानी फ्लैशबैक शैली में रची गई है जहाँ कहानी का नायक अपने पुराने प्रेम के दिनों को याद करते हुए अपनी प्रेमिका लछमा की सहायता बिना उसे जताए करता है ''रूपया लेने के लिए लछमा से अधिक आग्रह करने का उसका साहस नहीं हुआ। पर गहरे असंतोष के कारण बुझा-बुझा-सा वह धीमी चाल से चलकर वहाँ से हट गया। सहसा उसकी चाल तेज हो गई और घट के अंदर जाकर उसने एक बार शंकित दृष्टि से बाहर की ओर देखा। लछमा उस ओर पीठ किए बैठी थी। उसने जल्दी-जल्दी अपने निजी आटे के टीन से दो-ढाई सेर के करीब आटा निकालकर लछमा के आटे में मिला दिया और संतोष की एक साँस लेकर वह हाथ झाड़ता हुआ बाहर आकर बाँध की ओर देखने लगा।''[९] अतः यह कहा जा सकता है कि यह कहानी प्रेम के आदर्शवादी स्वरूप जिसके केंद्र में त्याग और समपर्ण रहता है उसे रेखांकित करती हैं। इस कहानी के संदर्भ में किसी आलोचक ने उचित ही लिखा हैं ''कहानी में परिवेश की बुनावट सघन है। जहाँ पात्र नहीं बोलते वहाँ वातावरण आगे बढ़कर कहानी की डोर थाम लेता है। आपको कहानी में स्थिति के अनुसार अंग्रेजी (सैन्य जीवन के शब्द), कुमाऊंनी के शब्द मिलते हैं जो जीवन और पात्र को परस्पर एक करते चलते हैं। कहानी के एक बड़े हिस्से में पूर्वदीप्ति (फ्लैशबैक) का प्रयोग है। हिंदी कहानी में इस तकनीक का सफल इतिहास 'उसने कहा था' (१९१५) से मिलता है। मूलतः यह एक सिने तकनीक है। शेखर की कहानियों में मुख्य पात्र का परिचय प्रायः आरम्भ में ही मिलता है।''[१०] यह निर्विवाद है कि शेखर जोशी की कोसी का घटवार कहानी प्रेरक एक विशिष्ट स्वरुप को उजागर करती है।

शेखर जोशी की कहानियाँ न केवल पहाड़ी जन जीवन और कारखानों में काम करने वाले मजदूरो के जीवन संघर्ष को रखांकित करती हैं वरन् उनकी कहानियाँ सामाजिक चेतना और सामाजिक विसंगतियों को भी प्रकाशित करती हैं। कहने का आशय यह कि शेखर जोशी बड़े 'विजन' वाले ऐसे कहानीकार है जिनकी कहानियाँ पाठकों पर बलात् विचारधारा का आरोपण नहीं करती है बल्कि उनकी कहानियाँ कहानीकार की दृष्टि और उसकी प्रतिबद्धता को स्वयं में प्रकृत रूप में अनुस्यूत किए रहती हैं। शेखर जोशी की यही दृष्टिसम्पन्नता और वैचारिकी उन्हें बड़े कहानीकार के रूप में स्थापित करती है। 'निर्णायक' कहानी की पंक्तियाँ

द्रष्टव्य हैं ''मुझे उसका अपने सम्मुख इस तरह उपस्थित होना करुणाजनक लग रहा था, यदि इसका हल्का-सा भी आभास मुझे पहले हो गया होता तो शायद मैं अपने-आपको इस स्थिति से बचा ले जाता, यूँ भी सामान्य स्थिति में मुझे उसके जीवन का निर्णायक बनने का कोई अधिकार नहीं था। पर यह उसके बहस की व्यक्तिगत सनक थी, वह मेरे ही स्तर का कर्मचारी था और उसका बहस अधिक दिन नहीं हुए, मेरा भी बहस रह चुका था।''[११] शेखर जोशी के कहानीकार रूप की विशिष्टता को रेखांकित करते हुए प्रतिष्ठित आलोचक ओमप्रकाश ग्रेवाल उचित ही लिखते हैं ''हिंदी कहानी में पिछले चार दशक से भी ज्यादा समय से प्रेमचंद्र की पारदर्शी यथार्थ की परंपरा में लिखने वालों में शेखर जोशी का स्थान-शीर्ष है। मनुष्य की पहचान को गरिमा प्रदान करते हुए उन्होंने संवेदना की बारीक परतों पर सामंती अवशेषों के प्रतिरोध से लेकर आधुनिकतावादी साहित्यकारों को भी चकित और चिंतित करने वाले विषयों पर विश्वसनीयता के साथ लिखा। घटनाओं और परिवर्तनों को उन्होंने संजीदगी के साथ पकड़ा और उसमें एक अनुभवी की कल्पनाशीलता को भरा। कारखाना मजदूरों पर शेखर जोशी की कहानियों ने अपूर्व ढंग से बताया कि कहानी में इससे बड़ा और विशिष्ट गुणात्मक पड़ाव दूसरा नहीं हो सकता।''[१२] कहना न होगा कि शेखर जोशी की कहानियाँ भाषिक और शिल्प की दृष्टि से भी उतनी ही उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण हैं जितना की विषयवस्तु के धरातल पर।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. १. वैभव सिंह, कहानी विचारधारा और यथार्थ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २०२०ई, पृष्ठ २५५

२. शेखर जोशी, मेरा पहाड़, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९८९ ई., पृष्ठ ५५-५६

३. शेखर जोशी, मेरा पहाड़, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९८९ ई., पृष्ठ १८

४. शेखर जोशी, मेरा पहाड़, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९८९ ई., पृष्ठ ५४

५. शेखर जोशी, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९९७ ई. , भूमिका से

६. मधुरेश, नई कहानी : पुनर्विचार, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, प्रथम संस्करण २०२१ ई., पृष्ठ २१४

७. शेखर जोशी, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन पपेरबैक, पहला संस्करण १९९४ ई., दिल्ली, पृष्ठ ९

८. गोपाल राय २, हिन्दी कहानी का इतिहास १९५१-१९७५, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण २०१४ ई., पृष्ठ १५२
९. शेखर जोशी, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९९७ ई. , पृष्ठ ६४
१०. नीरज खरे (सं.), हिंदी कहानी वाया आलोचना, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण २०२२ ई., पृष्ठ २५९
११. शेखर जोशी, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपरबैक्स, पहला संस्करण १९९४ ई., पृष्ठ ११२
१२. शेखर जोशी, डांगरी वाले, आधार प्रकाशन, पंचकूला, प्रथम संस्करण १९९४ ई., फ्लैप से

-थाङमैबंद हिजम दिवान लैकाइ,
इंफाल७९५००१, मणिपुर
मोबाइल ८८३७४६७६४५
ईमेल : romilon81@gmail-com

हिन्दी कहानी में दिव्यांगजन बोध : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

–अनिल यादव

हिन्दी कहानी साहित्य में समय के साथ विविध सामाजिक विमर्शों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, किन्नर विमर्श आदि विमर्शों के साथ-साथ इन विमर्शों में एक विशिष्ट और अपेक्षाकृत नवोन्मेषी दृष्टिकोण के रूप में दिव्यांग विमर्श का उभार देखने को मिला है। यह विमर्श केवल शारीरिक अथवा मानसिक रूप से दिव्यांग व्यक्तियों की पीड़ा या करुणा का आख्यान नहीं है बल्कि यह समाज द्वारा गढ़ा गया दृष्टिगत भेदभाव, उपेक्षा और अधिकारों से वंचित किए गये समुदाय की चेतना को सामने लाने का एक सशक्त माध्यम है। हिन्दी कहानियों में यह विमर्श न केवल संवेदना उत्पन्न करता है बल्कि पाठक को सोचने पर विवश करता है कि दिव्यांग व्यक्ति भी उतने ही सक्षम, संवेदनशील और अधिकारों के अधिकारी हैं जितना कि कोई भी अन्य मनुष्य। हिन्दी कहानियां दिव्यांग पात्रों को केवल दुर्बल, करुणा के पात्र या पराश्रित के रूप में नहीं प्रस्तुत करतीं बल्कि उन्हें आत्मबल, संघर्षशीलता और आत्मगौरव के प्रतीक के रूप में भी चित्रित करती हैं। इन पात्रों के माध्यम से कहानीकार यह स्पष्ट करते हैं कि दिव्यांगता कोई अभिशाप नहीं बल्कि जीवन की एक भिन्न परिस्थिति है जिसे गरिमापूर्ण ढंग से जिया जा सकता है। आधुनिक कथाकारों ने दिव्यांगता को सहानुभूति से ऊपर उठाकर अधिकारों और समावेशिता की दृष्टि से देखा है। दिव्यांग विमर्श विषयक लेखन से सम्बन्धित अनेक कहानियां उपलब्ध हैं जैसे-पोलियो, पर कटा परिंदा, रोशनी से दूर, पड़ाव, जयशंकर प्रसाद की कहानी 'मधुआ', धर्मवीर भारती की कहानी 'गुलकी बन्नो', रांगेय राघव की 'पंच परमेश्वर' नेत्रहीन जैसी कहानियाँ एवं कहानीकार हैं। इसके साथ-साथ दिव्यांगता विषयक कहानी लेखन में उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, शिवानी, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, सुधा अरोड़ा, मंजुल भगत आदि लेखिकाओं के नाम भी प्रमुख हैं।

दिव्यांग विमर्श, दिव्यांग स्त्री चेतना, शारीरिक अक्षमता, सामाजिक न्याय, आत्मसम्मान, सामाजिक दृष्टिकोण।

प्रस्तावना (शोध आलेख)-किसी भी विमर्श को उत्कर्ष तक स्पर्श करने में कथा-साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण होता है। हिन्दी कथा साहित्य में दिव्यांग पात्रों की समस्याओं के

निरूपण के लिए डॉ० नामवर सिंह का कथन सटीक प्रतीत होता है-अभी तक जो कहानी कहती थी या कोई चरित्र पेश करती थी अथवा एक विचार को झटका देती थी, वही जीवन के प्रति एक नया भावबोध जगाती है। दिव्यांग विमर्श विषयक लेखन से सम्बन्धित आज अनेक कहानियां उपलब्ध हैं जैसे पोलियो, पर कटा परिन्दा, कण्ठहार, अंधेरे का सैलाब, फरिश्ते, इरा आदि प्रमुख दिव्यांग कहानियां हैं। दिव्यांगता विषयक कहानियों में विषयों की विविधता के साथ-साथ नवीनता भी है। दिव्यांगता विषयक कहानीकार विषय की यथार्थता के प्रति प्रतिबद्ध हैं। दिव्यांगता विषयक कहानी लेखन में मंजुल भगत, मालती जोशी, मणिका मोहनी, निरुपमा सोबती, कृष्णा अग्निहोत्री आदि प्रमुख हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व एवं पश्चात् हिन्दी कहानियों में दिव्यांग विमर्श से सम्बन्धित कहानियाँ मिलती हैं। दिव्यांग विमर्श के अन्तर्गत हमें कुछ धारणाओं का भी पता चलता है। कुछ विद्वान दिव्यांगता को पूर्व जन्मों के कर्मों का फल मानते हैं तो वहीं कुछ विद्वान स्थितियों परिस्थितियों की संरचना मात्र समझते हैं। जयशंकर प्रसाद की कहानी मधुआ इसी प्रकार की विचारधारा को प्रमुखता देती है। गूंगे व्यक्तियों को उचित काम प्रदान करने की वकालत करती है। "ये गूंगे अनेक अनेक हों, संसार में भिन्न भिन्न रूपों में छा गये हैं। जो कुछ कहना चाहते हैं और कह नहीं पा रहे हैं। जिनके हृदय की प्रतिहिंसा न्याय और अन्याय को परखकर अत्याचार को चुनौती नहीं दे सकती है। क्योंकि बोलने के लिए स्वयं होकर भी स्वर में अर्थ नहीं है क्योंकि वे असमर्थ हैं।"[१]

ममता कालिया की कहानी संग्रह 'सीट नम्बर छह' की कहानी 'आजादी' में एक बुजुर्ग महिला है जो एक पैर से अपाहिज है दूसरे में हमेशा दर्द रहता है। उसका परिवार उसकी तरफ ध्यान नहीं देता है। वह अपने दर्द के कारण हमेशा परेशान रहती है। जब वह डॉक्टर को दिखाने को कहती है तो उसका पति कहता है ''तुम्हें कौन ब्याह रचाना है अच्छे डॉक्टर की फीस भी अच्छी होगी'। परिवार में उसकी पोती ही उससे बतियाती रहती है। एक दिन स्वतन्त्रता दिवस पर मुन्नी सफेद कपड़े पहनकर जाती है तो उसकी दादी पूछती है आज कौन सा दिन है। मुन्नी कहती है आज आजादी का दिन है। दादी मुन्नी से कहती है उसके लिए थोड़ी सी आजादी पुड़िया में बांधकर लाना। जब स्कूल में राष्ट्रगान के बाद बताशे बाँटे जाते हैं तो मुन्नी उन्हें अपनी दादी के लिए बांधकर लाती है। परन्तु घर आकर वह दादी को जगाती है परन्तु दादी हमेशा के लिए सो चुकी थी उसे आजादी मिल चुकी थी।"[२]

इसी प्रकार धर्मवीर भारती की कहानी 'गुलकी बन्नो' भी एक दिव्यांग लड़की की दिव्यांगता की तरफ संकेत करती है। यदि उस लड़की को उसके कुबड़ेपन से मुक्त रखा जाय या उसको कुबड़ेपन का निन्दनीय आभास न कराया जाय तो वह अवश्य ही उच्चकोटि की

नागरिक बन सकती है। ये कुबड़ी (गुलकी) फिर भी समाज से लगातार लड़ रही है। वह अपने पति से दूर रहकर लगातार संघर्षरत है। यथा-ऐ कुबड़ी, ऐ कुबड़ी! अपना कूबड़ दिखाओ' ऐसा कहते हुए वह उसकी पीठ पर एक मुट्ठी धूल फेंक देता है। गुलकी को उसके पति ने छोड़ दिया है वह निर्वासित और नितांत अकेले जीवन जी रही है।

इसी तरह मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'सहचर' में बंशी नामक नायक की पत्नी को अचानक गैंग्रीन के कारण पैर कटवाना पड़ता है। अब वह निशक्त हो गई। परन्तु उसका पति बंशी उसे हार नहीं मानने देता। वह उसे यह महसूस नहीं होने देता कि वह निःशक्त है। वह अपनी पत्नी की सेवा दिल से करता है। जब उसे कोई दूसरी शादी की सलाह देता है तो वह उनसे झगड़ा कर लेता है। इस कहानी में पति-पत्नी का अगाध प्रेम देखा गया है। वह मानता है कि प्यार के बीच दिव्यांगता बाधा नहीं बनती। रिश्ते दिल से जुड़ते हैं स्वार्थ के लिए नहीं। इस कहानी में दिखाया गया है कि जब अपने ही दिव्यांगों को कमजोर महसूस नहीं होने देंगे तो फिर बाहर वालों की तो हिम्मत ही नहीं कि किसी को उपेक्षित मानें। रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानी 'भिखारिन' में भी एक वृद्ध दिव्यांग महिला के जीवन का वर्णन किया गया है। ''दिव्यांग होने के बावजूद भी वह कभी हताश निराश नहीं होती थी। प्रातः से लेकर संध्या तक वह हाथ फैलाए खड़ी रहती थी। लेकिन राहगीरों में पैसे देने की अपेक्षा हीन दृष्टि से देखने वालों की संख्या अधिक रहती है। फिर भी वह झिड़कियाँ पाकर वह निराश नहीं होती। दिव्यांगता के गुण उस वृद्ध भिखारिन में कूट कूट कर भरे होते हैं। वह ममत्व का अथाह सागर है। उस भिखारिन का एक पुत्र था जो एक दिन बीमार पड़ गया। भिखारिन उसकी दवा के लिए एक सेठ के पास रखे अपने पैसे मांगने जाती है क्योंकि वह भीख मांगकर इसी सेठ के पास पैसे एकत्र करती थी। क्योंकि बैंक न होने के कारण लोग सेठ-साहूकारों के पास पैसे जमा करते थे। अंधी भिखरिन भी सेठ के पास पैसे जमा करती थी। सेठ बेईमान किस्म का आदमी था उसने अंधी भिखारिन को पैसे देने से इन्कार कर दिया तो उसने सेठ से रुपये प्राप्त करने के लिए उसके दरवाजे पर अपने पुत्र को गोद में लेकर धरने पर बैठ गई। बच्चे का शरीर ज्वर से भभक रहा था और उस दिव्यांग अंधी भिखारिन का कलेजा भी। बाद में जब सेठ को पता चलता है कि वह उसी का बच्चा है तो वह उस बच्चे का इलाज करवाता है और अंधी भिखारिन के सेवा व त्याग से प्रभावित होकर वह उसके चरणों में गिर जाता है और जीवन भर उसका कायल रहा।''[३]

रवीन्द्र नाथ टैगोर की कहानी भिखारिन की तुलना हम प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' के सूरदास व अमृतलाल नागर के उपन्यास 'खंजन नयन' के सूरे से भी कर सकते हैं। जिस प्रकार यह बुढ़िया भिखारिन दिव्यांग है उसी प्रकार प्रेमचंद का सूरदास भी खूब प्रवीण व

दिव्यांग है। जिस प्रकार सूरदास अंग्रेजों व अन्यों से लड़ता है। उसकी झोपड़ी जला दी जाती है वह त्यागी व अन्य लोगों से सहानुभूति रखने वाला कर्तव्यपरायण व्यक्ति है। खंजन नयन का पात्र सूरे भी स्वावलम्बी व कर्तव्य परायण व्यक्ति है उसी प्रकार रवीन्द्र नाथ टैगोर की पात्रा भिखारिन भी जीवट, त्यागी, स्वावलम्बी कर्तव्यपरायण पात्र है।

हिन्दी कहानी का फलक काफी विस्तृत है। उसमें दिव्यांग लोगों की भी मौजूदगी है। उनका महत्व, विशेषताएं और चुनौतियाँ कई कहानियों में दर्ज हैं। दिव्यांग लोगों के जो संकट और जो उनका संघर्ष है वह भी हिन्दी कहानियों में अभिव्यक्त रूप से मिलता है। सुपरिचित आलोचक और सम्पादक गिरिराज शरण ने दिव्यांगों के जीवन पर केन्द्रित कहानियों का एक महत्वपूर्ण संकलन पुस्तक के रूप में तैयार किया 'विकलांग जीवन की कहानियाँ। इस संकलन के विवरण में यह बताया गया है कि-''किसी भी दिव्यांग को देखकर हमारा हृदय उसके प्रति सहानुभूति से भर उठता है। मानसिक यातना, अर्न्तद्वन्द और परिस्थितियों से संघर्ष करता हर विकलांग इस सृष्टि का सबसे निरीह प्राणी है। निराशा और हताशा के इस दमघोंटू वातावरण में वह किसी प्रकार सांस लेता सा और जीवन जीता सा नजर आता है ऐसे में आवश्यकता है उसे याद दिलाने की एक अंधे होमर की, किसी अपंग मूर्तिकार की जो उसके जीवन में नया संचार उत्पन्न कर सके और अपनी विकलांगता की बाधा से पार पा सके।''[४] 'विकलांग जीवन की कहानियां' पुस्तक की भूमिका में मिलता है कि एक विकलांग व्यक्ति में उत्पन्न होने वाले फ्रस्टेशन और निराशा भाव के लिए समाज के स्वस्थ लोग ही उत्तरदायी हैं जो किसी अपंग को यह अहसास दिलाने के अपराधी हैं कि वह शारीरिक और मानसिक तौर पर विकृत है। सहानुभूति में व्यक्त किए गए सुन्दर शब्दों के माध्यम से हम उनमें हीनता का भाव जागृत करते हैं, परिणामतः हम पुण्य के पर्दे में इस समुदाय के प्रति बहुत बड़ा अन्याय कर बैठते हैं। हम इस बात को स्वीकार करने का साहस नहीं जुटा पाते कि दिव्यांग दया का नहीं सम्मान का, समानता का, सहयोग का, और प्रेम का सच्चा अधिकारी है।

अगर हम २१वीं सदी के दौर की बात करें तो दिव्यांगजन अलग अलग रूपों में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। दिव्यांगों की कई अलग-अलग श्रेणियां निर्धारित की गई हैं लेकिन सबकी स्थिति लगभग एक सी ही है। सबको उपहास अपना तिरस्कार आदि झेलना पड़ता है। इस दौर की हिन्दी कहानियों में भी दिव्यांगों ने अपने संघर्ष, प्रतिभा, योग्यता और अपने होने के अहसास को बताया है। इस दौर के चर्चित कथाकार अखिलेश की कहानी श्रृंखला का नायक रतन कुमार आंखों से लगभग पूरा अन्धा है। आँखों की बीमारी उसकी जन्मजात थी। यद्यपि वह अपने जीवन की शुरुआत में पूरी तरह अन्धा नहीं था। वह धीरे धीरे दृष्टिमंदता का शिकार होता गया। अपनी जीवन यात्रा में वह दृष्टिमंदता के बावजूद एक अखबार में

'अप्रिय' शीर्षक से एक कॉलम लिखता है। वह अपराधियों, राजनेताओं और राजनीतिक दलों द्वारा प्रयुक्त भाषा और शब्दों को डिकोड करता है। वह अनेक रहस्यों को उजागर करता है वो भी बिना रुके और बिना डरे। रतन कुमार का लिखा बहुत असरकारी होता है। उसकी लोकप्रियता दिन पर दिन बढ़ती जाती है जिससे उसे जान से मारने की धमकी भी मिलती है। रतन कुमार को तरह तरह की यातनाएं भी मिलती हैं लेकिन वह हार नहीं मानता। वह पुलिस, प्रशासन हर जगह शिकायत करता है। उसकी कहीं कोई सुनवाई नहीं होती है। रतन कुमार ने एक दिन अपनी प्रेमिका सुनिधि से कहा 'मेरी आंखों में लगातार पीड़ा रहती है और अंधेरा सा भरा रहता है। सो जाने पर पीड़ा खत्म हो जाती है पर अंधेरा बना रहता है। जब से मेरे ऊपर हमला हुआ है अंधकार और कष्ट मेरी आँखों का पीछा नहीं छोड़ रहे हैं।

मुझे लगता है कहीं मैं अन्धेपन के गड्ढे में न गिरने वाला होऊं। डॉक्टर के पास गया वह कहते हैं कि कोई खास बात नहीं है। इससे मुझे आराम मिला लेकिन मैं क्या करूँ। कष्ट सहन नहीं होता और अंधकार से डर लगता है। तमाम यातनाएं सहने के बाद भी उसे नाउम्मीदी ही मिलती है तो वह कहता है ''मेरा अपाहिजपन दरअसल इस देश के शक्तिपीठों की क्रूरता और न्यायप्रणाली की क्रूरता को दर्शाता है।''[५]

मनीषा कुलश्रेष्ठ द्वारा रचित कहानी 'कठपुतलियाँ' का रामकिसन पैर से दिव्यांग है। ''वह अपनी आजीविका कठपुतलियों के नाच का खेल दिखाकर चलाता है। बहुत कम उम्र में ही इस कहानी की युवती सुगना की शादी राम किसन से तय हो जाती है। सुगना की सहेलियाँ सुगना पर तंज कसती हैं तुझे भी नचाएगा वो लँगड़ा कठपुतली बनाकर। आखिर रामकिसन लँगड़ा ही तो था कोई अपराधी तो नहीं।''[६] इसी तरह दिव्यांगता पर केन्द्रित कहानियों में कंचन सिंह चौहान की कहानी संग्रह 'तुम्हारी लंगी' २०२० में प्रकाशित हुई। इस संग्रह की लेखिका स्वयं एक दिव्यांग है। इस संग्रह की समीक्षा करते हुए कथाकार प्रियदर्शन ने लिखा है ''अपने पहले कहानी संग्रह तुम्हारी लंगी में लेखिका अपने इस यथार्थ से बहुत सहजता से आंख मिलाती है। संग्रह की पहली ही कहानी में उनकी नायिका कहती है 'महिला दुहरी विकलांग है और अचानक हमारे सामने यह समझने का अवसर छोड़ देती है कि विकलांग को हम किसी निर्यात या प्रकृति प्रदत्त चीज की तरह नहीं बल्कि एक सामाजिक निर्मिति की तरह देखना सीखें।''[७] निस्संदेह इस विकलांगता की अपनी टीसें हैं कभी जीवन में उपयुक्त साथी न मिलने का दुख, कभी किसी के लिए उपयुक्त साथी न हो पाने की दशा। मगर जाने किसकी खुशी तलाशी है जैसी कहानी हमारे पास न हो तो उस जीवन की उस दुविधा को समझना आसान न हो जो दिव्यांगता की सामाजिक स्थिति से पैदा होती है। इसी तरह राकेश मिश्र की कहानी 'छल' और महेश कटारे की कहानी 'आदि पाप' में भी दिव्यांगता

से जूझते पात्रों को साफ देखा जा सकता है।

इन तमाम कहानियों से गुजरते हुए हमें यह पता चलता है कि हिन्दी कहानियों में भी दिव्यांगों को हेय दृष्टि से देखने तथा उन्हें कमजोर मानने की मानसिकता बनी हुई है। हमारे समाज के अधिकतर लोग आज भी उन्हें अपमानित और उपेक्षित करने का कोई मौका नहीं छोड़ना चाहते। इसके बावजूद दिव्यांग अपने साहस, संघर्ष और लगन के बूते अपनी काबलियत से अपनी पहचान बनाने में सफल हो रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. जयशंकर प्रसाद,'मधुआ', प्रसाद ग्रन्थावली, पृ० १०१

२. ममता कालिया 'आजादी कहानी' पृ० २०

३. रविन्द्र नाथ टैगोर, 'रविन्द्र नाथ टैगोर की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ', धीरज पॉकेट बुक्स, विनायक प्रिन्टोग्राफर, नई दिल्ली, पृ० ११०

४. गिरिराज शरण सिंह (सं०) २०१० 'विकलांग जीवन की कहानियाँ' नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, पृ० ६

५. मनोज कुमार पाण्डेय (सं०) २०१७, 'प्रतिनिधि कहानियाँ', अखिलेश नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ० २०

६. मनीषा कुलश्रेष्ठ, 'कठपुतलियाँ', २००८ कहानी संग्रह, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ पृ० ८

७. https://khabar.ndtv.com/News/literature/book-review tumhari-langi-bypriyadarshan-2347129 (देखा गया २.९.२०२५, ११:२० बजे)

-शोध छात्र (हिंदी विभाग),
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. राजेश कुमार गर्ग
हिंदी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

रामधारी सिंह दिवाकर की कहानियों में स्त्री के विविध स्वर

–शिल्पी कुमारी

स्त्री के बिना पुरुष और समाज का अस्तित्व निरर्थक प्रतीत होता है। भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की उपयोगिता महत्वपूर्ण होने के बावजूद भी वे पुरुषों के अधीन ही रहीं। दरअसल नवजागरण काल में स्त्रियों के अस्तित्व के लिए राजाराम मोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, फातिमा शेख आदि ने अहम कदम उठाया। कारणवश आधुनिक स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक सोच की चारदीवारी लांघकर अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत प्रतीत होती हैं। स्त्रियाँ शिक्षित होकर, स्वतंत्र, सशक्त, स्वावलंबी और स्वाभिमानी बन रही हैं। वे स्वयं के विकास हेतु नए-नए अवसर की तलाश में रहती हैं। आठवें दशक के कहानीकार रामधारी सिंह दिवाकर की कहानियों में स्त्रियों के विविध स्वर परिलक्षित होते हैं।

स्त्री जीवन, स्त्री स्वर, शिक्षा, संघर्ष, सशक्तिकरण, स्वाभिमान, अधिकार, अस्मिता।

बिहार के साहित्यिक परिवेश में रामधारी सिंह दिवाकर आठवें दशक में अवतरित हुएं। जीवन के अस्सी वसंत पार कर चुकें ग्रामीण जीवन के कथाशिल्पी रामधारी सिंह दिवाकर को २०१८ का 'श्रीलाल शुक्ल स्मृति इफको' साहित्य सम्मान से नवाजा गया। इनका जन्म १ जनवरी १९४५ को कोसी क्षेत्र के अररिया जिले के नरपतगंज गाँव में हुआ। इनकी कहानियों में बिहार का सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियाँ उत्कर्ष पर है। वर्षों से शोषित-दमित स्त्रियाँ पुरुष प्रधान समाज की रूढ़ हो चुकी मानसिकता को समाप्त करने की जद्दोजहद में लगी हैं। इनकी कहानियों में स्त्रियों की संवेदनाएं, आवेग एवं चरित्रों की अभिव्यक्ति जीवंत प्रतीत होती है। साथ ही उनके बहुरंगी मुखर स्वर भी परिलक्षित होते हैं।

रामधारी सिंह दिवाकर की कहानियों में समाज के प्रत्येक वर्ग से स्त्री-पात्र मुखरित होती हैं।

"तन के भूगोल से परे
एक स्त्री के
मन की गाँठें खोल कर
कभी पढ़ा है तुमने

उसके भीतर का खौलता इतिहास?
अगर नहीं।
तो फिर जानते क्या हो तुम
रसोई और बिस्तर के गणित से परे
एक स्त्री के बारे में...?''[1]

निर्मला पुतुल की कविता में उद्धृत यह प्रश्न, संपूर्ण भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है। क्या वाकई पुरुषों के समक्ष, रसोई और बिस्तर के गणित से परे स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं है? भले ही रूढ़ीवादी पुरुषों की दृष्टि में स्त्री का अस्तित्व रसोई और बिस्तर से इतर न रहा हो, लेकिन स्त्रियाँ स्वयं की दृष्टि में स्वावलंबी और स्वाभिमानी होने की राह में अवश्य है। इस कथन की मार्मिकता व्यक्त करती रामधारी सिंह दिवाकर की कहानियाँ 'मखान-पोखर' और 'बदचलन' है। दोनों कहानियों की पात्र विधवा हैं और वे विधवा होते हुए भी पूरी दृढ़ता से खड़ी तमाम दोमुहे लोगों को तुर्शी-व-तुर्शी जवाब देती हैं। वे मन के आंतरिक झंझावातों को झेलते हुए, अपनी अस्मिता को तलाशती हैं। 'मखान-पोखर' की दुलरिया, परिवार के साथ-साथ दृष्टिविहीन समाज को भी दो टूक जवाब देती है-''बेवा हूँ तो क्या हुआ? जीने नहीं देंगे आप लोग?''[2] स्त्रियाँ परिवार के साथ-साथ समाज में पुरुष वर्चस्व वाली व्यवस्था से लगातार संघर्ष कर रही हैं। किताबी ज्ञान से ज्यादा व्यावहारिक ज्ञान रखने वाली दुलरिया स्त्री-चेतना से लवरेज है- ''पोथी-वोथी की बात मैं नहीं जानती, मगर इतना जानती हूँ कि मरद के भरोसे पलने वाली महरारु कभी आजाद नहीं हो सकी, भले ही वो मरद पति हो, चाहे बाप या भाई या और कोई।''[3] पारिवारिक और सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध गंवई स्त्रियों की चेतना जागृत हो रही है। कहानी में दुलरिया के संपूर्ण आत्म-संघर्ष, मानसिक पीड़ा एवं स्वाभिमानी रूप प्रतिफलित होता है। कहानी की रचनाधर्मिता पर समीक्षक वरुण कुमार तिवारी के शब्द- ''नारी की आक्रांत चेतना और उसके रोयें-रेशे में रची-बसी वेदना को अभिव्यक्त करने वाली यह कहानी नारी-जाति के समक्ष एक नया और यथार्थ संसार रचने में समर्थ दिखाई पड़ती है।''[4]

दूसरी ओर 'बदचलन' कहानी की विधवा सहेली अपने जीवन-चर्या को सुचारू बनाने हेतु निजी कंपनी में नौकरी करती है। असहाय और अकेलेपन का फायदा उठाते हुए साहब के दुर्व्यवहारता को नाकाम करती हुई सहेली दिखती है- ''साहब का सिर फोड़ा है सहेली ने। उस दिन साहब देर शाम तक अपने चेंबर में थे। सहेली को भी रोक रखा था। पता नहीं क्या हुआ, उनके चेंबर मेंद्य मैंने देखा, सहेली भागती हुई गेट के बाहर जा रही है।...''[5] अबला समझने वाली सहेली ने दुराचारी साहब का तबला बजा दिया।उपर्युक्त दोनों कहानियों में विध

ावा स्त्री, आर्थिक रूप से संबल है। एक में गंवई ओजस्विता है, तो दूसरे में शहरी जीवन का तेजपन है। दोनों स्वावलंबी होकर अस्तित्व की रक्षा करती हैं। यहाँ बदलते हुए समाज को पूर्ण सजीवता के साथ दिखाया गया है।

स्त्रियों का राजनीति में कदम सशक्तीकरण का द्योतक है। रामधारी सिंह दिवाकर की कहानियाँ 'रंडियाँ' और 'सुराजो की चिट्ठी' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। कहानी 'रंडियाँ' में बगैर आरक्षण के, जयमाला देवी वर्ष १९७२ के ग्राम पंचायत चुनाव में जीत से मात्र एक कदम दूर थी। ''बाहुबली सम्राट सिंह को चुनौती देती जयमाला देवी का धुआँधार भाषण और आश्वस्त करने वाली निर्भीक मुद्रा लोगों को रोमांचित कर जाती। पहली बार कोसी क्षेत्र के इस पिछड़े इलाके में लोगों ने किसी दबंग युवती को ऐसा धाराप्रवाह भाषण देते देखा। सम्राट सिंह की हार तय हो गई।''[६] लेकिन पुरुषों की दृष्टिविहीनता ने जयमाला देवी को कुलटा और चरित्रहीन का टैग दे देता है जिससे वह चुनाव हार जाती है। वर्ष १९७२ में जो पुरुष वर्ग गाँव की एकमात्र सशक्त महिला जयमाला देवी को छल-प्रपंच से चुनाव में पराजित करवा दिया, वही पुरुष वर्ग वर्तमान समाज (वर्ष २००५) में अपने घर की स्त्री को मुखिया बनाना चाहते हैं- ''इस त्रिस्तरीय पंचायती चुनाव में महिलाओं को पहली बार आरक्षण मिला है और इसी अप्रत्याशित सुविधा के कारण गाँव की औरतें दहलीज लांघ कर बाहर निकल आए हैं। मर्द भी चाहते हैं उनके परिवार की औरतें मुखिया सरपंच, जिला-परिषद-सदस्य बनें, कुछ नहीं तो वार्ड सदस्य ही सही!''[७] यहाँ पुरुष प्रधान समाज के लोगों की दोहरी मानसिकता चित्रित हुई है। बिना किसी आरक्षण और सहयोग से स्त्रियाँ जब जीवन में सफल होना चाहती हैं, तो गाँव-जवार या आस-पड़ोस के लोग उसे बहिष्कृत कर देते हैं। यह वर्तमान समय की भी ज्वलंत समस्या है।

रामधारी सिंह दिवाकर की एक अन्य कहानी 'सुराजो की चिट्ठी' है।कहानी में हरिजन स्त्री (सुराजो) अपने गाँव-परिवार के सुराज के लिए बाबू-बबुआनों का डटकर सामना करती है। उनके अधिकार और अस्तित्व के लिये उसे जेल भी जाना पड़ता है। ''घरढुक्की में ग्राम पंचायत के मुखिया को सामी गाँव के हरिजन टोले की औरतों ने पकड़ लिया था और मुखिया के नाक-कान काट लिए थे। बाद में झूठे मुकदमे किए गए हरिजन टोले पर गिरफ्तार करने पुलिस आई। हरिजन टोले की औरतों ने पुलिस की जीप को घेर लिया, बंदूकें छीन ली और पुलिस को खदेड़ दिया।... इसका नेतृत्व सुराजो नाम की एक मजदूर हरिजन स्त्री कर रही थी।''[८] यहाँ लेखक, ग्रामीण समाज की स्त्रियों में उभरती जनचेतना तथा राजनीतिक व्यवस्था में सफल सहभागिता का चित्रण करते हैं। स्त्रियों का स्वावलंबी होना एक बेहतर समाज की स्थापना की ओर संकेत कर रहा है। इस कहानी की कथावस्तु को देख मुझे सुप्रसिद्ध कवयित्री

अनामिका की एक पंक्ति स्मरण हो रही है-

''मैं एक दरवाजा थी।मुझे जितना पीटा गया, मैं उतना ही खुलती गई।''[९]

उपर्युक्त कविता के भावार्थ को लिए रामधारी सिंह दिवाकर की एक और कहानी 'जन्मांतर' है। इसमें तीन पीढ़ी की कथा को आधार बनाया गया है।यहाँ पुरानी पीढ़ी के प्रतीक दादाजी, नई और पुरानी पीढ़ी के प्रतीक पिताजी और पूर्णरूपेण नई पीढ़ी की प्रतीक नीरजा है। जहाँ एक ओर पिता (चंद्रभूषण) स्वयं के विजातीय विवाह के समय आधुनिक प्रतीत होते हैं, तो वहीं दूसरी ओर नीरजा के विजातीय विवाह का प्रस्ताव सुनते ही वे परम्परावादी हो जाते हैं। पिता के द्वारा, विजातीय विवाह के प्रस्ताव पर जितना हस्तक्षेप किया जाता है, उतना ही नीरजा विवाह के लिए मान करती हुई प्रतिउत्तर देती है- ''कीजिये जो करना हो, मुझे तनिक भी चिंता नहीं। अपनी जिंदगी का फैसला मुझे करना है। अपना भला-बुरा मैं खुद सोचती हू।चाहें तो सूटकेस की तलाशी ले लीजिए, मैं हमेशा के लिए आपका घर छोड़कर जा रही हूँ।''[१०] शिक्षित और स्वाभिमानी नीरजा का यह कदम पिता के अंतर्विरोधी विचारों पर करारा प्रहार है, जो विचार त्रिशंकु की भाँति अधर में लटकी हुई प्रतीत होती है। जीवन के फैसले लेने के लिए स्त्रियों को शिक्षित, सशक्त और स्वाभिमानी होने की आवश्यकता है। इस कहानी की कथावस्तु के समकक्ष मन्नू भंडारी की 'त्रिशंकु' कहानी है, जहाँ मम्मी नई और पुरानी पीढ़ी के अंतर्द्वन्द में रहती हैं।

उपर्युक्त कहानियों से इतर पारिवारिक परिवेश में लिखी गई रामधारी सिंह दिवाकर की और भी कहानियाँ हैं। जहाँ आधुनिकीकरण की आँधी में रक्त संबंध धूमिल हो रहे हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण 'खोई हुई जमीन' कहानी है। परिवार में अहम भूमिका निभाने वाली बुआ, परिवार की शर्तों में ही अपना सर्वस्व खो देती हैं। जहाँ बचपन में बड़ी बुआ चाचा, छोटी बुआ और मुझपर (वक्ता) माँ की तरह स्नेह बरसाती हैं, तो वहीं बड़े होकर चाचा और छोटी बुआ, लाचार और बेबस बड़ी बहन की अवहेलना करते हैं- ''आज बड़ी बुआ को अपने आँगन में पोते-पोती के साथ भिखारिन की तरह बैठे देखा है। शायद अपने पोते-पोती के लिए भी बड़ी बुआ माँ ही बनी हुई हैं।सोचता हूँ, जीवन-भर माँ की ममता बांटने वाली बड़ी बुआ के लिए क्या अंतिम घड़ियाँ में भीख का बासी भात खाना ही शेष रह गया था।''[११] यहाँ रक्त संबंधों को कठघरे में खड़ा किया गया है।साथ ही प्रश्न भी किया गया है कि परिवार में सम्मान रिश्तों के आधार पर होने चाहिए या धन दौलत की सामर्थ्यता के आधार पर? यह सवाल भारतीय समाज के प्रत्येक परिवार के लिए भी है, जहाँ रिश्ते धन-दौलत की भार से दबते जा रहे हैं। बशर्ते इसका शहरी भतीजा, बुआ के नाम उनकी जमीन रजिस्ट्री कर देता है। कहानी

में संघर्ष करती हुई स्त्री की व्यथा-कथा है, जो अपने ही रक्त-संबंधों से हक की माँग करने में असमर्थ प्रतीत है।

रामधारी सिंह दिवाकर ने अपनी कहानियों में ऐसी स्त्री पात्रों का वर्णन भी किया, जिनकी समाजार्थिक स्थिति बेहतर होते ही, व्यवहार असामाजिक हो जाता है। अपने ही सगे-संबंधियों से दुर्व्यवहार करने लगती है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण 'नवजात' और 'मानो दीदी' कहानी है। अफसर की पत्नी बनते ही मेम साहब कहलाने वाली सरोसती का स्वयं की गंवई बहन (सोमरी बहन) के साथ अमानवीय व्यवहार सोचनीय प्रतीत होता है- ''मेम साहब भुनभुना रही थीं, 'नाक में दम कर दिया है गाँव-दिहाइत के लोगों ने। एस.पी. साहब की मैडम ने पूछा, 'क्यों क्या हुआ? कौन हैं ये लोग?' मेम साहब नाक-भौं सिकोड़ती आजिज होकर बोलीं, 'होंगे साहब के गाँव के नाई-धोबी, चाहे जन-मजूर।जब से परमोसन पाकर यहाँ आए हैं, तब से गाँव-जवार का कोई-न-कोई आवते रहता है।''[१२] बहन सरोसती के इस कटु शब्दों के उपरांत भी सरल, सहज एवं स्वाभाविक व्यवहार से सोमरी बहन उसे समाज की वर्गगत सच्चाई से रूबरू करवाती है।सरोसती बहन की आँखों में शहरीपन की माड़ी छाई रहती है, जिसे सोमरी बहन, समाज के कड़वे सच से हटाने का प्रयत्न करती है।'ग्रामीण संस्कारों की संवेदना' आलेख में समीक्षक जगदीश विकल के शब्द हैं- ''चरित्र-सृजन की दृष्टि से 'नवजात' एक खास कहानी है जहाँ उसकी बहन सामाजिक रिश्ते और हार्दिकता को मूल्यवत्ता प्रदान करती है।सोमरी का चरित्र सचमुच संस्कार और मानसिक चित्रण का नया आयाम सृजित करता है, जिसके संप्रेषण से उपजी हार्दिकता वस्तुतः मनुष्यता को ताकतवर बनाती है।''[१३] यहाँ शहरी सोच पर ग्रामीण संस्कार की विजय होती है। स्त्रियों को अवश्य ज्ञात रहना चाहिए कि जमीन से जुड़कर ही हम आसमान की बुलंदियाँ हासिल कर सकते हैं। हमें अपनी मर्यादा और संस्कार को कभी त्यागना नहीं चाहिए। इनकी दूसरी कहानी 'मानो दीदी' में भी छोटी बहन का बड़ी बहन के साथ अनुचित व्यवहार परिलक्षित होता है।

आर्थिक रूप से संबल न होने पर स्त्रियों के शारीरिक और मानसिक शोषण का प्रत्यक्ष उदाहरण 'मंदिर चढ़ी कागा बोले' और 'जाहिल' कहानी है। दोनों कहानियों में मालिक अपने घरेलू नौकरानी को अपनी जागीर समझ उसके साथ बर्बरता से पेश आता है।'मंदिर चढ़ी कागा बोले' कहानी के रणवीर बाबू का कथन- ''तुम इन कमीनों को नहीं जानते अमरेश। बिना जूते-लात के ये सीधे नहीं होते। कल इस लड़की को मारते-मारते मैंने बेहोश कर दिया था। मुँह से खून निकलने लगा तो कमरे में बंद कर दिया। भूख-प्यास से मरने लगेगी तब कबूल करेगी। अंगूठी इसी ने चुरायी है। तान्त्रिक जी भी यही कहते हैं।''[१४] यहाँ सांस्कृतिक और नैतिक रूप से भ्रष्ट नेता रणवीर सिंह का कुकृत्य दिखाया गया है। धन्ना सेठ नेताओं

के सामने निर्धन नौकरानी की आवाज अर्थहीन प्रतीत होती है। इनकी दूसरी कहानी 'जाहिल' में भी नौकरानी सकीना के साथ शकील साहब पाशविक व्यवहार करते हैं। जहाँ एक ओर शकील साहब अपनी श्रेष्ठता हेतु समाज में सभ्य व्यवहार रखते हैं, तो वहीं दुसरी ओर सही मायने में विकलांग भाई एवं नौकरानी के प्रति क्रूर व्यवहार करते हैं। नौकरानी सकीना की एक चूक पर शकील साहब उसकी पिटाई कर देते हैं- ''ई जो साहब हैं न, क्या नाम है...हजूर, ई तो कसाई हैं।देखिये तो बेचारी नौकरानी को लोहे की छड़ से इतना मारा है कि देह फूट गई है। पीठ देखिये, ई बाँह देखिये।...साक्षात् कसाई हैं आप। खाली ऊपर से साहब बनते हैं।''[१५] नौकरानी सकीना के इस हृदयविदारक स्थिति को देखकर विकलांग अब्बास उससे लिपटकर विचित्र आवाज में रोने लगता है। चंद पैसों के नाम पर मालिक, नौकरों का पशुओं की भाँति दैहिक और मानसिक शोषण करता है। यहाँ भी नौकरानी दो वक्त की रोटी के मातहत शोषण और उत्पीड़न झेलने को विवश रहती है।

घरेलू हिंसा की शिकार स्त्री का सजीवता के साथ वर्णन रामधारी सिंह दिवाकर की कहानी 'रसलीला' में होती है। जहाँ पुरैनीवाली को यौन और मानसिक पीड़ा उसके ही श्वसूर के द्वारा दिया जाता है। उसका श्वसूर मनमाने ढंग से उसका दैहिक उपभोग करता है, लेकिन लोकलाज के भय से वह पति बचेसर को कुछ भी बता नहीं पाती है। ''अधनंगी-सी इस तरह बैठी थी पुरैनीवाली, जैसे अपना होश न हो। आँगिया फटी हुई थी, साड़ी अस्त-व्यस्त। चेहरा घायल था, होंठ कटे हुए थे और मुँह से खून की बूंदें टपक रही थीं। खून की कुछ बूँदें गालों पर सूखकर काली पड़ गयी थीं।''[१६] बेसुध अवस्था में पड़ी पुरैनीवाली की यह अविश्वसनीय दशायें भारतीय समाज की हृदयविदारक स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित करती है। समूचा गाँव-जवार बूढ़े के कूकृत्य से अवगत रहता है लेकिन मानसिक रूप से अस्वस्थ बचेसर इस घटना की यथार्थता को स्वीकार नहीं कर पाता है। पति के अप्रतिम प्रेम एवं विश्वास के कारण पुरैनीवाली कुछ कह भी नहीं पाती और घूटकर रहने लगती है। गाहे-बगाहे समाचार पत्रों में स्त्रियों के बलात्कार और घरेलू हिंसा की घटना दृष्टिगत है। ३१ अगस्त, २०२२, ०६:०३ अपराह्ण आइ एस टी-नई दिल्ली से प्रकाशित 'द हिन्दू' समाचारपत्र में 'एनसीआरबी डेटा के अनुसार 'भारत में २०२१ में प्रतिदिन औसतन ८६ बलात्कार के मामले दर्ज हुए, महिलाओं के खिलाफ प्रति घंटे ४६ अपराध हुए।' भारत में यह दर्ज मामला है, किंतु पुरैनीवाली जैसी असंख्य महिलाएं और भी हैं, जो लोक-लाज के भय से अपनों को बताने से कतराती हैं। कारण समाज के दृष्टिविहीन लोग अंततः स्त्री को ही बदचलन, कुलटा आदि अन्य नामों का तमगा पहना देते हैं।

रामधारी सिंह दिवाकर की एक अन्य कहानी 'दूध-माँ' है। जहाँ सांप्रदायिक सौहार्द को

चित्रित करती स्त्री की कथा है। अयोध्या के बाबरी मस्जिद विध्वंस से समूचे भारत में हिन्दू-मुस्लिम के मध्य वैमनस्य भाव उत्पन्न होने लगता है। बशर्ते इसके, शहर की छोड़ पर बने कस्बे में हिन्दू परिवार के मध्य एकमात्र रसूल भाई का परिवार स्वयं को महफूज समझता है। बुद्धन की पत्नी के देहांत पर हसीना भाभी अपना दूध पिलाकर बच्चे को जीवित रखती हैं- ''ई बच्चा के फिकर जिनी करो बुद्धन।...'' बोलते-बोलते रोने लगती है हसीना भाभी, ''हम पाल लेंगे। हम पिलाएंगी अपन दूध मान लेंगी कि हम को दू गो बेटा है- एगो कासिल दूसरा ई...''[७] यहाँ हिन्दू-मुस्लिम के मध्य सद्भाव की उत्कृष्टता देखी जा सकती है।हसीना भाभी के लिए मानवीय संबंधों से इतर कुछ भी शेष नहीं है।

निष्कर्ष- वस्तुतः हिन्दी साहित्य के आठवें दशक के उल्लेखनीय कथाकारों में रामधारी सिंह दिवाकर गणमान्य हैं। इनकी कहानियों में परिवार और समाज के केंद्र में अवस्थित स्त्रियों के विविध स्वर, पूर्ण सजीवता के साथ परिलक्षित होते हैं। इनकी अधिकांश कहानियों यथा- 'मखान-पोखर', 'सुराजो की चिट्ठी', 'बदचलन', 'रंडियाँ' इत्यादि की स्त्री-पात्र, परंपरा से स्त्रियों की चिर बन्दिनी मूक छवि को तोड़ विद्रोह की भास्वरता प्रदान करती हुई प्रतीत होती हैं। साथ ही स्त्रियाँ नकारात्मकता को नकार सकारात्मकता की ओर अग्रसर हो रही हैं। लेखक कहानियों में स्त्री-पात्रों की चयन प्रक्रिया में समाज का कोना-कोना झांक आए हैं। इन्होंने स्त्रियों की दशाओं का वर्णन चालू फैसनों से इतर, समाज की यथार्थ पृष्ठभूमि में किया है।जहाँ एक ओर शिक्षित नीलिमा और सहेली है, तो वहीं दूसरी ओर अनपढ़ दुलरिया और सोमरी बहिन है।जहाँ एक ओर मेमसाहब सरोसती है, तो वहीं दुसरी ओर नौकरानी सकीना है। इनके स्त्री-पात्र पुरुषवादी मानसिकता के विरुद्ध समाजिक, आर्थिक व्यवस्था में संघर्ष करती हुई प्रतीत होती हैं। इस प्रकार इनकी कहानियों की स्त्रियों का नैसर्गिकपन पूर्ण सजीवता के साथ प्रस्तुत होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पहला सजिल्द सं-२००५, पृष्ठ-८
२. संकलित कहानियाँ, रामधारी सिंह दिवाकर, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, प्रथम सं-२०१६, पृष्ठ-१३७
३. वही, पृष्ठ-१५१
४. कोसी अंचल का सृजनात्मक हिन्दी साहित्य, कहानी खंड, वरुण कुमार तिवारी, आयुष पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्रथम सं-२०१६, पृष्ठ-६६
५. रामधारी सिंह दिवाकर की सम्पूर्ण कहानियाँ, खंड-दो, रामधारी सिंह दिवाकर, साहित्य संसद, नयी दिल्ली, प्रथम सं-२०२५, पृष्ठ-१६३

६. संकलित कहानियाँ, रामधारी सिंह दिवाकर, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, प्रथम सं-२०१९, पृष्ठ-३९
७. वही, पृष्ठ-४१
८. रामधारी सिंह दिवाकर की लोकप्रिय कहानियाँ, रामधारी सिंह दिवाकर, प्रभात प्रकाशन, प्रथम सं-२०१९, पृष्ठ-३६
९. हिन्दी समय.कहम, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय का अभिक्रम
१०. रामधारी सिंह दिवाकर की सम्पूर्ण कहानियाँ, खंड-दो, रामधारी सिंह दिवाकर, साहित्य संसद, नयी दिल्ली, प्रथम सं-२०२५, पृष्ठ-७४
११. संकलित कहानियाँ, रामधारी सिंह दिवाकर, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, प्रथम सं-२०१९, पृष्ठ-७५
१२. धरातल, रामधारी सिंह दिवाकर, वाणी प्रकाशन, प्रथम सं-१९९७, पृष्ठ-६१
१३. ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र, रामधारी सिंह दिवाकर का कथा-साहित्य, संपादकः जीतेंद्र वर्मा, राजदीप प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम सं-२०१०, पृष्ठ-७०
१४. रामधारी सिंह दिवाकर की सम्पूर्ण कहानियाँ, खंड-एक, रामधारी सिंह दिवाकर, साहित्य संसद, नयी दिल्ली, प्रथम सं-२०२५, पृष्ठ-२०७
१५. रामधारी सिंह दिवाकर की सम्पूर्ण कहानियाँ, खंड-दो, रामधारी सिंह दिवाकर, साहित्य संसद, नयी दिल्ली, प्रथम सं-२०२५, पृष्ठ-४७
१६. रामधारी सिंह दिवाकर की लोकप्रिय कहानियाँ, रामधारी सिंह दिवाकर, प्रभात प्रकाशन, प्रथम सं-२०१९, पृष्ठ-९३
१७. रामधारी सिंह दिवाकर की सम्पूर्ण कहानियाँ, खंड-तीन, रामधारी सिंह दिवाकर, साहित्य संसद, नयी दिल्ली, प्रथम सं-२०२५, पृष्ठ-२२

-शोधार्थी, हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
मोबाइल नं-७५४५९८६१८१

२१वीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में चित्रित जीवन पर राजनीतिक प्रभाव

–डॉ० मनीष कुमार शुक्ला

मानव जीवन में राजनीति ऐसी अवधारणाओं और सामान्यीकरणों का एक ताना-बाना है। जिसका सम्बध सरकार, राज्य और समाज के स्वरूप, प्रयोजन और मुख्य विशेषताओं से तथा मानव प्राणियों की राजनीतिक क्षमताओं से संबंधित विचारों मान्यताओं एवं अभिकथनो से है। देश का शासनतन्त्र महानगरों में ही नहीं पूरे देश को संचालित करता है। महानगर देश की आर्थिक व राजनैतिक केन्द्र होते हैं। समय के साथ-साथ राजनैतिक मानदण्ड बदल रहे है। इस तरह उपन्यासो के माध्यम से परिवर्तित राजनैतिक परिदृश्य को दिखाया जा रहा है।

बिना वोट और लोकमत के कोई नेता नहीं बन सकता। नेता नहीं तो सत्ता नहीं अतः सत्ता प्राप्त करने के लिए नेता लोग वोट की राजनीति करते हैं। राजनीतिक दल सत्ता में आने के लिए तरह-तरह के प्रलोभनों व हथकंडे अपनाते है। चुनाव जीतने के लिए नेता जाति, धर्म का सहारा लेते है। और अपना स्वार्थ सिद्ध करते है। महानगरो में चुनाव के समय वोट प्राप्त करने के लिए राजनीतिक पार्टियाँ तरह-तरह के प्रलोभन देती है साफ-सफाई के नाम पर, बेहतर सुख-सुविधाओं के नाम पर। चुनाव हो जाने के बाद सारे वादे पूरे नहीं होते। ऐसा ही दृश्य सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' में दिखता है। उपन्यास की नायिका वर्षा जब मुम्बई शहर में आती है तो वहाँ पर लगे पोस्टर व होल्डिंग से पार्टियो के किये गये वादे दिखायी देते है। वर्षा के शब्दो में- शहर में अनेकानेक मनोरंजक बैनर और दार्शनिक भित्ति-लेख पाये गये।मेयर का उद्‌गार ('सुन्दर मुंबई, हरित मुंबई') अपने-आप में मनोरम वेदांती पहेली थी। ..... जहाँ मुंबई सुन्दर लगी, वहाँ हरीतिमा के नाम पर महजकैक्टस के ही दर्शन हुए और जहाँ हरीतिमा थी, वहाँ सुन्दरता की तलास को बीच में ही रोककर नाक पर रुमाल रखना पड़ा। .....बांद्रा में पानी के पाइप पर अंकित दो बिन्दु-बिन्दु विचार उसकी जुबान पर चढ़ गये, ''गरीब ने वोट दिया। गरीब को क्या मिला?-शाहिद हकीम और गरीब की दुनिया में हरदम अँधेरा क्यों?-शाहिद हकीम।''[१]

चित्रामुद्‌गल ने अपने उपन्यास आवां में श्रमिकों के हितो को लेकर वोट की राजनीति का चित्रण किया है। 'सेना' व 'काम आधाड़ी' जैसे श्रमिक संगठन मजदूरों के हितो की आड़

में अपना स्वार्थ सिद्ध करते नजर आते है। मजदूर नेता पवार व अन्ना साहब अपना चुनावी वोट सुरक्षित रखने के लिए जातीय समीकरण का प्रयोग करते है। मजदूर किरपू द्वारा वेश्या अनीसा की हत्या में ऐसा समीकरण बनाते है जिससे दोनो तरफ की वोट सुरक्षित रहे। अन्ना साहब का मानना है- ''किरपू ने जघन्य अपराध किया है। अपराध की सजा उसे मिलनी चाहिए। उसके परिवार की जिम्मेदारी आघाड़ी संगठन की जिम्मेदारी है। समस्त मजदूर समाज की जिम्मेदारी है।''[२] इससे अन्ना साहब ने किरपू के अपराध को उचित ठहराकर वेश्याओ का विश्वास मत प्राप्त किया और परिवार को अघाड़ी संगठन के माध्यम से आर्थिक सहायता देकर मजदूरो का विश्वास मत प्राप्त करने की कोशिश करते है। 'कामगार आघाड़ी' के सर्वेसर्वा वोट प्राप्ति के लिए मजदूरो के हक की लड़ाई लड़ते हैं। जोशपूर्ण भाषण देते हैं,मजदूरो की सुविधा के लिए प्रतापनगर स्थित दीवार 'दीवार ढहाओ अभियान' के अंतर्गत तोड़ते हैं। मील मालिक और बिल्डरलोगो के खिलाफ किरायेदारों की तरफ से लड़ते हैं। पवार दलित बोट अपने पक्ष में देखकर बहुत गर्वान्वित महसूस करता है तो दूसरी तरफ विमला बेन 'जागोरी' के माध्यम से नारी और वेश्या की समस्याओं को लेकर विधान सभा में हंगामा खड़ा कर देती है, जिसका फायदा उन्हें विधान सभा की भांडुप वाली सीट की जीत में हुआ।

राजनीतिक पार्टियाँ अपने वोट के लाभ के लिए संविधान में भी फेर-बदल करने से पीछे नहीं हटते। शहरो में आये दूसरे देश से घुसपैठियो को वोट बैंक के लिए वहाँ बसाने से, पहले से रह रहे वहाँ के निवासियो को मुसीबतो का सामना करना पड़ता है। ऐसा चित्रण प्रदीप सौरभ ने अपने उपन्यास 'मुन्नी मोबाइल' में कथाकार के माध्यम से चित्रित किया है कथाकार के शब्दो में- 'दिल्ली अब आदमियो का श्लाटर हाउस हो गया है। हर आदमी यहाँ कट रहा है।कसाई बाड़े में मुर्गे की कीमत से भी सस्ता आदमी की कीमत है यहाँ बांग्लादेशी घुसपैठियों ने तो इण्डियन आदमी की कीमत और घटा दी है। इस देश के नेता वोट बैंक की राजनीति के चलते बांग्लादेशियों को अपने सीने से लगा लेने के लिए देश का संविधान तक बदलने में नहीं हिचकिचाएगें।'[३] वोटो की राजनीति पर 'एक जमीन अपनी' उपन्यास के पात्र हरींद्र का मानना है कि आज की सच्चाई यही है कि कोई सामाजिक समस्या सामाजिक न रहकर राजनीतिक हो गई है, ''वोट की राजनीति पूरे षड्यंत्र के साथ रूढ़ियों, संकीर्णताओं, परम्पराओं और धर्माधता को समुदायगत विशेषता और धर्मनिरपेक्षता के आड़ में अक्सर और आवश्यकतानुसार उसकी रक्षक बनने के ढोंग रचकर, अपना उल्लू सीधा कर रही है।''[४]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है वर्तमान काल में व्यक्ति राजनीति में लोक सेवा व राष्ट्रभक्ति के भाव से नहीं बल्कि वह अपने स्व हित पद, धन, प्रतिष्ठा के लिए राजनीति में प्रवेश करता है।

स्वहित की राजनीति में जो लोक सत्ता में नहीं रहते है, वे सच्चाई, ईमानदारी, देश सेवा, जनता की खुशहाली तथा जनता की सर्वांगीण विकास की बाते करते है और जब सत्ता में आ जाने के बाद अच्छे वसूल भूलकर जनता का शोषण करने लगते है।

महानगरों में नेता लोग स्वहित के लिए एवं सत्ता में बने रहने के लिए 'फूट डालो, राज करो' की नीति अपनाते है। महानगरों में मजदूर अपने अधिकारो के लिए संगठन बनाते है। लेकिन संगठन के कुछ अगुओं को कंपनी लालच देकर अपने पक्ष में खींच लेती है तब मजदूर यूनियन में फूट पड़ती है। तब यूनियन में कई भाग बनते हैं। और आपस में लड़ते-झगड़ते है। जिसका फायदा कंपनी को होता है। 'आवां' उपन्यास में 'कामगार आघाड़ी' और 'लोक शाही यूनियन' में परस्पर विरोधी घोषणा देते, नारेबाजी करते,पुतले जलाते,मार-पीट करते, कूटनीति तथा मजदूरो को बहकाते हुए दिखाया है,जिसका फायदा 'रिचर्डसन बेबरी' के प्रबंधकों को होता है। इसी उपन्यास के मजदूर नेता अन्ना मीलो को बंद करने का आयोजन करते है यह कामगार आघाड़ी का आत्मघाती हड़ताल लगभग अठारह महीने तक चला। इसमें हड़ताली मजदूरो की कमर तोड़ दी। इसमें बी.बी.सी ने खूब मजे लिए। हड़ताली मजदूरों की भूख से बिलबिलाती औरतों और नंग-धड़ंग बच्चों को सड़को पर गाड़िया रोक-रोककर भीख मांगते हुए। मुम्बई के सड़को पर निकलने वाला कौन-सा ऐसा व्यक्ति होगा जिसनेमजदूरो के लिए अपनी जेब से कुछ न कुछ निकाला हो। कुछ घरों में औरते जीवन से उबी हताश और गले में फंदा डालकर आत्म हत्या कर लेती है। इस तरह की आत्मघाती हड़ताल को बल देने वाले अन्ना को अंजनाबासवानी कहती है, ''ऐसी भी बेवकूफियां करते है लोग सुर्खियों में बने रहने और खुद को बनाये रखने के लिए --- बंद करवा दी मिलें की मिलें सनकी ने। कमर तोड़ दी देश के उद्योगों की। अब भी तोड़ने पर तुला हुआ है। नशा नहीं उतरा उस सनकी का! खुद कभी भूखा नहीं सोया होगा न!''[५] स्वतंत्रता से पूर्व जब लोग राजनीति में आते थे तो उनके सामने राष्ट्रहितो की प्रधानता होती थी। पर आज की राजनीति दूषित हो चुका है। महानगरीय संदर्भों में राजनीतिक आधार परिवर्तित हो रहा है। आज व्यक्ति लोक सेवा व कल्याण की भावना से नहीं बल्कि पैसे व पावर की लालसा से राजनीति में आता है। 'हॉस्टल के पन्नो से' उपन्यास में एक पात्र पीके राजनीति में आने वाले लोगों व उनके द्वारा किये गये कार्य के लिए कहते है- ''..... तो क्या राजनीतिक लोग सही काम करने के लिए होते है? .....तेरे को क्या पता नहीं .....! अमा यार, वो तो सिर्फ राज करने के लिए होते हैं..... राज को प्राप्त करने की नीति ..... राजनीति ..... यही है न .....!!''[६] इसी उपन्यास का पात्र मिलिंद अपने दोस्त प्रणव से राजनीति के बारे में कहता है, ''देखो प्रणव, आजकल राजनीति में हर चाल अपने फायदे के लिए होती है। ये तो

मुस्कारते भी तभी है जब कुछ हिसाब हो .....यही राजनीति है।''[७] मिथिलेश्वर के उपन्यास 'सुरंग में सुबह' में कूटनीति व स्वहित के उदाहरण मिलते है। नेता अपने चाल से जनता को परास्त करने में लगे रहते हैं। जनता के मत और धन से स्वयं को प्रभावशाली सिद्ध करते हैं। भारत की आजादी के बाद से साधारण जनता अपनी मांगो को मनवाने के लिए भूख हड़ताल, अनशन आदि तरीका अपनाती रही है। आज के समय में इसका विस्तार कुछ ज्यादा दिखायी देता है। दुखद यह कि सत्ताधारी कुछ नेता अनशन को तोड़ने के लिए अपने आदमी भेजकर अनशन में भगदड़ मचवा देते है। इससे प्रशासन को कठोर होना लाजिमी है और अनशन का प्रभाव कमजोर या समाप्त हो जाता है। अनशनकारी अपने मांगो को छोड़कर अपने को कानूनी पचड़े से बचने लगते है। यह राजनीतिक नेताओ का साधारण जनता की मांगो को दबाने का तरीका है। इसी तरह अनशन को समाप्त करने के लिए अनशनरत छात्रों या कर्मचारियो पर अतिरिक्त भार देते है। किसी कम्पनी के कर्मचारी हड़ताल कर रहे है। वे अपने वेतन में वृद्धि चाहते हैं। ऐसी स्थिति में कूटनीतिक नेता कर्मचारियोकी बात मान लेते है परन्तु भवन एवं वाहन का किराया या स्वास्थ सुविधाओं में कटौती करके कर्मचारियो दबाव बनाते है। कर्मचारी या तो वेतन वृद्धि की मांग छोड़ देते है या पहले से प्राप्त सुविधा त्यागना पड़ता है। ऐसे राजनीतिक तरीको का चित्रण लेखक ने किया है। मिथिलेश्वर ने उपन्यास में राँची के वॉटरइण्डिया का वर्णन किया है। कर्मचारी ने हड़ताल कर दी थी। राव बाबू हड़ताल समाप्त करने में माहिर थे। राव बाबू राँची जाने से पूर्व वॉटर इण्डिया कम्पनी को निजीकरण करने का फैसला कर लिया। इससे कम्पनी के कर्मचारी अपने वेतन वृद्धि एवं स्वास्थ्य सुरक्षा जैसे मुद्दों को छोड़कर निजीकरण रोकने के लिए हड़ताल करना पड़ा। हड़ताल समाप्त करने के लिए राव बाबू ने तीन वर्ष के लिए निजीकरण को टाल दिया। इससे कर्मचारियों की सहानुभूति पाये और वेतन वृद्धि से मुक्त हुए। आने वाले तीन वर्ष में चुनाव होने वाले थे। राव बाबू इस कार्य को सत्ता पक्ष के लोग ने बहुत सराहना की क्योकि राव बाबू पुनः सत्ता प्राप्त करने का मार्ग खोजा। ''राव बाबू ने बीच का मार्ग निकालते हुए कहा, आप लोगों के प्रति मेरी विशेष हमदर्दी है। आपके संगठन ने सदैव मेरा समर्थन किया है। फिलहाल आदेश तो बिलकुल वापस नहीं हो सकता है .....। आप लोगो के लिए मैं इतना अवश्य करा दूँगा कि यह आदेश तीन साल के लिए स्थगित हो जाय। तीन साल की अवधि कम नहीं होती है। उस वक्त किसकी सरकार रहेगी, क्या स्थिति होगी, देखी जायेगी। अगर फिर हमारी सरकार कायम हो गयी तो इसे समाप्त करने का भी प्रयास करूँगा।''[८] नेता जी राव बाबू के इस कार्य से नायक जनार्दन निराश होता है। इससे राव बाबू के प्रति उसकी आस्था कम होने लगती है। जनार्दन राव बाबू के बारे में सोचता है- ''यह आदमी तो नायक की शक्ल में

खलनायक है। हंस के चोले में खूँखार गिद्ध।"[९]

इस विवरण से स्पष्ट है कि लोगो का राजनीति में आना लोक सेवा व समाज का हित नहीं बल्कि अपना कैरियर बनाना होता है और धन कमाना हो गया है। नेता मंत्री बनते ही अपनी कई पीढ़ियो के लिए वे धन उगाही शुरू कर देते है।

किसी बड़ी संस्था या सरकार के परिचलान के लिए निर्धारित की गयी संरचनाओं एवं नियमों को समग्र रूप से अफसरशाही, नौकरशाही या ब्यूरोक्रैसी कहते है। अफसरशाही केंद्र व राज्यों के मध्य व्यवस्था का संचालन करने वाला तंत्र है। जो सरकार के नियमोनीतियो को लागू करने के साथ-साथ उन्हें जनता तक पहुँचाता है। परन्तु वर्तमान में परिवर्तित महानगरीय परिवेश में अफसरशाही के नये रूप उभर रही है। आज के नौकरशाह अपने सिद्धान्तों व कर्तव्यों से विमुख होकर संविधान की बजाय मंत्रियो, नेता व पूँजीपतियो के प्रति अपनी इमानदारी का निर्वाह कर रहे है जिसके फलस्वरूप प्रशासन में चापलूसी, अनुशासनहीनता एवं अनेक प्रकार के छल-प्रपंचो का बोलबाला होता जा रहा है। जिसका सजीव चित्रण मनोज सिंह ने अपने उपन्यास 'हॉस्टल के पन्नो से' में प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास का पात्र दुष्यंत राठौर को जो बेकसूर होते हुये भी 'कामना' नाम की छात्रा का बलत्कार व हत्या तथा ड्रग्स में विष्णुदत्त द्वारा फँसा दिया जाता है। विष्णु दत्त उस समय उस शहर का बहुत बड़ा नेता होता है। अपने आदमियो से दुष्यंत पर जानलेवा हमला करवाता है। जिससे बहुत चोटे आती है। विष्णुदत्त स्थानीय मीडिया को अपनी तरफ करके वहाँ की प्रशासन व्यवस्था का इस्तेमाल अपने पक्ष में करता है। इलाज के दौरान दुष्यंत का एक हाथ काट दिया जाता है। जिसका खुलासा एक रिकार्डिंग के जरिए विष्णु दत्त व सीएमओ साहब के बात-चीत से होता है- का सीएमओ साहब, काहे सरकार की छवि खराब करने पर लगे है ..... आप क्या जवाब देंगे। काहे हाथ काट दिये .....हम को भी अब मीडिया परेशान करेगा ..... नेता जी,हम तो पूरी कोशिश कर रहे हैं ..... अगर हम हाथ अलग न करते तो वो तो मर जाता। ..... तो ठीक होता, मरने के सौ बहाने,होश में न ला पाने का कोई बहाना है आप के पास? ..... नही, तो आप कैसे डॉक्टर है? .....आप ही तो कह रहे थे कि अपराधी महत्वपूर्ण है। इसकी गवाही सरकार के लिए जरुरी हैं ..... इसलिए तो हम आपरेशन के लिए तुरंत मान गये थे।"[१०] इसी उपन्यास में विष्णुदत्त अपने राजनीति पावर का सहारा लेकर अरुण के केजीआई कोचिंग सेंटर पर ड्रग्स की तलासी के लिए रेड डलवाता है एसीपीपाण्डेय से। क्यो कि दुष्यंत राठौर का अरुण कालेज मित्र था। दुष्यंत को फसाए जाने पर अरुण उसे बचाने में सहायता कर रहा था। जिसका खुलासा रिकार्डिंग से होता है- 'रे पांडे का कर रह है .....? .....पाय लागूँ नेता जी .....! वोकेजीआई पर रेड होना

है। हम कमिशनर को बोल दिये हैं। सिर्फ हमारा पांडे जायेगा ..... बड़ा टर्र-टर्र करता है ये छोरा बचपन से ..... तुम्हारे नाम एक और सक्सेसस्टोरी जानी चाहिए .....बहुत दिनो से पुलिस कुछ कर नहीं रही थी .....अब तुम जाओगे तो फिर मुर्दे भी बोलने लगते हैं .....वैसे पक्की खबर है, साला ये इंस्टिट्यूट वाला भी इन्वाल्व है, छोड़ना नहीं एसी पी, समझे।'[११]

अतः कहा जा सकता है कि महानगरो में अफसरशाही का राजनीतिकरण हो रहा है। अधिकारी वही कार्य करते है जो राजनेताओ द्वारा आदेश दिया जाता है। इस तरह के अधिकारी अपनी सोच, लक्ष्य, इरादे का दिखावा कर खुद को कल्पनाशील, उत्साही एवं पहलकदमी करने वाले पदाधिकारी प्रदर्शित करते है। किसी भी केश को हाई प्रोफाइल बनाने के लिए उस पर काम कम व प्रचार अधिक करते है। कानून, संविधान व समाज के प्रति अपना उत्तरदायित्व भूलकर राजनीतिज्ञो के वफादार होते जा रहे है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. वर्मा, सुरेन्द्र : मुझे चाँद चाहिए, पृष्ठ २६१
२. मुद्गल, चित्रा : आवां, पृष्ठ ३६१
३. सौरभ, प्रदीप : मुन्नी मोबाइल, पृष्ठ १५
४. मुद्गल, चित्रा : एक जमीन अपनी, पृष्ठ ६५
५. मुद्गल, चित्रा : आवां, पृष्ठ ६८
६. सिंह, मनोज : हॉस्टल के पन्नो से, पृष्ठ ५६
७. वही, पृष्ठ २२४
८. मिथिलेश्वर : सुरंग में सुबह, पृष्ठ ४५
९. वही, पृष्ठ ५२
१०. सिंह, मनोज : हॉस्टल के पन्नो से, पृष्ठ २६८
११. वही, पृष्ठ २६९

-आनन्द नगर, नैनी, प्रयागराज

राष्ट्र की आत्मा का कवि

–विमल कुमार

राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी आधुनिक काल के महत्वपूर्ण कवि हैं। उनकी कविताओं ने स्वतंत्रता आंदोलन के युग में जन-जन को प्रभावित किया और आजादी की लड़ाई में क्रांति लाई। उनकी कविताओं को पढ़कर भारतीय सिपाहियों में ऊर्जा का संचार हुआ। लेकिन राष्ट्रीय चेतना के इस महान कवि को हिंदी साहित्य में कम जगह मिली और आलोचकों ने भी ध्यान नही दिया। उनके समकालीन साहित्यकारों ने जो लिखा है उसके आधार पर उनके जीवन और साहित्य को जानने का प्रयास है साथ ही आज के युग में उनकी कविताओं की क्या प्रासंगिकता है और क्या मूल्य है, इन सभी दृष्टिकोणों से द्विवेदी जी के काव्य पर विचार करने की कोशिश है। हिंदी के यशस्वी साहित्यकार कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने 'चालीस वर्ष पहले' नामक लेख में सोहनलाल द्विवेदी को 'राष्ट्र की आत्मा का कवि' कहा है। यह लेख 'एक कवि एक देश' पुस्तक में संकलित है। यही पंक्ति मेरे आलेख का शीर्षक बन गयी। मैं कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' जी के ऋण को स्वीकारता हूँ।

राष्ट्रीय काव्यधारा का प्रमुख स्वर राष्ट्रीयता एवं देशप्रेम है। राष्ट्रीय चेतना के प्रमुख कवि गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी और रामधारी सिंह 'दिनकर' हैं। देशप्रेम की कविताएँ लिखने में इन सभी कवियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। राष्ट्रीय काव्यधारा के कवि सोहनलाल द्विवेदी के विषय में काकासाहब कालेलकर ने लिखा है- ''राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी हमारे जमाने के एक श्रेष्ठ कवि हैं, यह आत्मीयता ही मेरे लिए सर्वोपरि है। वह जमाना आज न रहा। लेकिन उस जमाने की भक्ति हृदय से लुप्त नही हुई है। इसलिए आज भी उनकी कविता पढ़ते वही आनंद मिलता है जो आनंद उस जमाने का था।''[1]

सोहनलाल द्विवेदी भारतीय जनता में देशप्रेम की भावना जगाने वाले कवि हैं। आजादी के दौर में जनमानस को मातृभूमि की रक्षा के लिए प्रेरित किया। उनकी कविताओं ने वीर सैनिकों को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। देश प्रेम और शौर्य उनकी कविताओं का विशेष गुण है। यशस्वी उपन्यासकार अमृतलाल नागर ने बिल्कुल सही कहा है- ''आंदोलन काल में

राष्ट्रीय-चेतना को बढ़ावा देने में कविवर सोहनलाल द्विवेदी का महत्व किसी भी राष्ट्रनायक से कम नहीं है।''[२]

देशप्रेम से युक्त द्विवेदी जी की काव्य पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

''अब देश-प्रेम की रंगत में,
रंग गया हमारा यह जीवन।
उसके ही लिए समर्पित है,
सबकुछ अपना यह तन-मन-धन।'' [३]

मातृभूमि के प्रति अगाध प्रेम को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है। वीर सैनिकों को साहस और उमंग से भर देने वाली ये पंक्तियाँ आज भी सीमा में तैनात हर सिपाही को प्रेरणा देती हैं। वीर जवानों का जीवन हम सबके लिए एक आदर्श है। माँ भारती की रक्षा में पराक्रमी सेना का योगदान सराहनीय है। हमारे सेना के वीर सिपाही भारत माँ की आन-बान-शान के लिए सदैव तत्पर रहते हैं और अपनी जननी जन्मभूमि की रक्षा के लिए एक-एक पल जीते हैं। ऐसी देशप्रेम की प्रेरक कविताओं के लिए कविवर सोहनलाल द्विवेदी हमेशा याद किये जायेंगे।

सन १९४१ में 'भैरवी' काव्य संकलन का प्रकाशन होता है। इसमें राष्ट्रीय जागरण की कविताएँ संकलित हैं। इस काव्य में देशप्रेम की धड़कन है। इन कविताओं को पढ़कर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- ''वर्तमान कविता के क्षेत्र में पंडित सोहनलाल द्विवेदी का विशेष स्थान है और वह उल्लेखनीय है। इनकी कविता सीधे हृदय से निकलती हुई हमारे मर्म को स्पर्श करती है और चिरस्थायी प्रभाव उत्पन्न करती है। श्री द्विवेदी जी को जीवन के मर्मस्पर्शी पक्ष की पूरी परख है, इनकी सफलता का सबसे बड़ा कारण यही है। वे अपनी कविता द्वारा जनता को रसमग्न करते रहें।''[४]

महामना के गुरुकुल काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में द्विवेदी जी पढ़ रहे थे और वह आजादी के आंदोलन का दौर था। उस दौर में उनकी कविताएँ बहुत चर्चित हुईं। 'खादी गीत' कविता द्विवेदी जी नें स्वयं बापू को सुनाई और उन्हें समर्पित की। 'भैरवी' को पढ़कर पंत जी कहते हैं- ''गोरे, लंबे, स्वस्थ-सुडौल शरीर वाले प्रसन्नमुख भावुक इस युवक कवि के खादी के स्वर अपनी एक विशेषता रखते हैं। उनकी कविता सुविज्ञ साहित्यिकों की ही नहीं, जनता-जनार्दन की भी प्रिय वस्तु है। उनकी सरल प्रसादमयी भाषा, सहज भावुकता, सुबोध कल्पना तथा विश्वास और भावनामयी देशभक्ति जनता के लिए विशेषतः आकर्षक है।''[५]

उस दौर में उनकी 'पूजागीत' कविता जन-जन के कंठ का गान बन गई-

''वंदना के इन स्वरों में, एक स्वर मेरा मिला लो।

वंदिनी माँ को न भूलो,
राग में जब मत्त झूलो,
अर्चना के रत्नकण में,
एक कण मेरा मिला लो।" [६]

द्विवेदी जी ने अनेक अभियान गीतों को रचा, जिन्हें जन-जन ने उत्साह पूर्वक गाया। यही क्रांति-गायन आजादी का आधार बना। उन अगणित सैनिकों के बलिदान का इतिहास द्विवेदी जी की कविताओं में देखा जा सकता है।

द्विवेदी जी की कविताओं में जागरण का संदेश है। वे कहते हैं-

"सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोने वाले!" [७]

मेरे भारत वासियों यह सोने का वक्त नही है। उठो! मातृभूमि की रक्षा करो। कवि ने ऐसी ओजपूर्ण वाणी से जागरण का संदेश दिया। यह संदेश आज भी भारत वासियों के लिए पथ प्रदर्शक है।

आजादी के दौर में द्विवेदी जी की कलम जनक्रांति में अग्रणी रही। अपनी कविता के माध्यम से कहते हैं मेरे भारत के पराक्रमी सिपाहियों तुम अपना संपूर्ण जीवन मातृभूमि को समर्पित कर दो-

"दुनिया में जीने का सबसे
सुंदर मधुर तकाजा।
ऐ शहीद ! उठने दे
अपना फूलों भरा जनाजा।" [८]

देश की रक्षा में अगर प्राण भी जाएं तो जाने दो लेकिन पीछे कदम न हटाना। मेरे देश के वीर सिपाहियों आपके इस सर्वोच्च बलिदान को आने वाली पीढ़ी युगों-युगों तक याद करेगी और आपके जीवन से प्रेरणा लेगी।

'तू अपनी धुन के पीछे चल' कविता में आशा, आकांक्षा और दृढ़ संकल्प की सच्ची अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।

"दुनिया क्या कहती कहने दे,
तू अपनी मस्ती रहने दे,
तू जरा न अपने पथ से टल

तू अपनी धुन के पीछे चल"[९]

द्विवेदी जी ने अनेक अनुपम कविताएँ लिखी हैं।

"अचल रहा जो अपने पथ पर
लाख मुसीबत आने में,
मिली सफलता जग में उसको
जीने में मर जाने में !"[१०]

आज के नवयुवकों को नई स्फूर्ति से भर देने वाली ये कविताएँ हैं। इसी अर्थ में इनकी प्रासंगिकता बढ़ जाती है। अपने जीवन से हताश नवयुवक यहाँ से जीवनीशक्ति ले सकता है। आज उदासी और अकेलेपन में बहुत लोग जी रहें हैं उनके संघर्ष पथ पर सोहनलाल द्विवेदी की कविताएँ नई उमंग पैदा करने में सक्षम हैं।

आजादी के बाद सन १९७२ में 'मुक्तिगंधा' काव्य संग्रह में लिखते हैं-

"अब न गहरी नींद में तुम सो सकोगे,
गीत गाकर मैं जगाने आ रहा हूँ।
तुम उठो, धरती उठे, नभ सिर उठाये,
तुम चलो गति में, नयी गति झनझनाये,
विपथ होकर मैं तुम्हें मुड़ने न दूँगा,
प्रगति के पथ पर बढ़ाने आ रहा हूँ।"[११]

जनता के कवि सोहनलाल द्विवेदी युवा पीढ़ी को उसके दायित्व का बोध कराते हैं और अपनी रचना के माध्यम से उसे सशक्त, समृद्ध बनाते हैं। कवि की इच्छा है नयी पीढ़ी आलस न करे बल्कि नव संकल्प के साथ आगे बढ़े। भारत का नव निर्माण करे।

स्वातंत्र्योत्तर युग में आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक विषयों पर द्विवेदी जी ने लिखा है। जनता की आवाज को वाणी दी है।

राजनैतिक भावबोध की कविताएँ प्रस्तुत हैं-

"व्यथा दूर हो सभी देश की,
इतना आज अगर कर पाओ,
सिंहासन का मोह छोड़कर
जनता के साथी बन जाओ!" [१२]
"तुम चोरबाजारी बढ़ा रहे या घटा रहे?
बेहाल करो मत हाल और बेहालों का!

पीछे झंडा फहराना, ऐ झंडेवालो,
पहले जवाब दो मेरे चंद सवालों का!''[१३]
''मुझे नहीं है लोभ राज के वरदानी वरदान का,
मुझे नहीं है लोभ राज्य के सम्मानी सम्मान का,
मैं जनता का साथी हूँ, मैं कवि हूँ हिन्दुस्तान का,
खोज रहा हूँ माँझी माँ को इस डगमग पतवार का,
मुझे भरोसा रहा नही अब दिल्ली के दरबार का।''[१४]

आजादी के बाद की भारतीय राजनीति पर द्विवेदी जी चोट करते हैं। कहते हैं 'मैं जनता का साथी हूँ' जनता की ओर से सवाल कर रहा हूँ। कवि ने शोषित, वंचित, दलित, जनता के संघर्ष को लिखा है। उस दौर में जो कुछ लिखा उसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

युग यथार्थ को सशक्त वाणी देने वाले कवि सोहनलाल द्विवेदी के विषय में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी कहते हैं- ''सोहनलाल जी को मैं प्रचुर मौलिकता सम्पन्न ऐसा ही कवि हृदय रसज्ञ मानता हूँ और उनके कुणाल काव्य को पढ़ लेने के पश्चात मेरी यह धारणा और भी दृढ़ हो गई है कि राष्ट्रीयता का अनन्य प्रेमी यह वीरोपासक कवि हिंदी में राष्ट्रीय महाकाव्य की कमी पूरी करने के लिए ही सौभाग्यवश हमारे साहित्य में आया है।''[१५]

द्विवेदी जी की कविताओं का शिल्प सरल है। खड़ीबोली हिंदी और बोलचाल के शब्दों का प्रयोग है। उनकी मातृभाषा अवधी के शब्द सहज ही शामिल हैं। हरिभाऊ उपाध्याय कहते हैं- ''यदि प्रसन्नता, सजीवता, प्रभावोत्पादकता कविता का प्रधान गुण हो, तो सोहनलाल जी इसमें लाजवाब हैं।''[१६]

कवि अपनी कलम से युग कर्तव्य को सच्चाई के साथ पूरे जीवन निभाते रहे। उनकी कलम कभी मंद नही पड़ी। उनकी कविताओं में आशा की किरण है। उत्साह की भावना है। कर्तव्य की भावना है। नव संकल्प शक्ति के प्रेरक भाव हैं, ये मूल्य जनमानस के लिए अमृत के समान हैं।

बाकी सब ठीक है।

निष्कर्ष : राष्ट्रीय काव्यधारा के श्रेष्ठ कवियों में सोहनलाल द्विवेदी शामिल हैं। उनकी कविताओं में देशप्रेम के भाव समाहित हैं और आजादी के आंदोलन का समूचा इतिहास समेटे हुए हैं। देशभक्ति की कविताएँ हमेशा हमें प्रेरणा देती रहेंगी। देशप्रेम एक मूल्य है, ये मूल्य नई पीढ़ी के चरित्र निर्माण में सहायक है। द्विवेदी जी के प्रयाणगीत पाठक को नई ऊर्जा प्रदान

करते हैं, प्रगति पथ पर बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। मातृभूमि के कण-कण से प्रेम करने वाले द्विवेदी जी देशप्रेम की धड़कन के कवि हैं। उनकी कविताएँ युगों-युगों तक समाज को दिशा देती रहेंगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. एक कवि : एक देश, सं. बनारसीदास चतुर्वेदी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्र. पंडित सोहनलाल द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ समिति, प्रकाशन वर्ष १९६९, पृ.सं. २५

२. राष्ट्रवादी और छायावादी संगम, एक कवि : एक देश, सं. बनारसीदास चतुर्वेदी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्र. पंडित सोहनलाल द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ समिति, प्रकाशन वर्ष १९६९, पृ.सं ९३

३. पथगीत, भैरवी, सोहनलाल द्विवेदी, प्र. इंडियन प्रेस इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष १९५१ चतुर्थ संस्करण, पृ.सं. १२१

४. भैरवी, सोहनलाल द्विवेदी, प्र. इंडियन प्रेस इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष १९५१ चतुर्थ संस्करण, पृ. सं. १३

५. भैरवी, सोहनलाल द्विवेदी, प्र. इंडियन प्रेस इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष १९५१ चतुर्थ संस्करण, पृ. सं. ६

६. पूजागीत, भैरवी, सोहनलाल द्विवेदी, प्र. इंडियन प्रेस इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष १९५१ चतुर्थ संस्करण, पृ.सं. १

७. सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी, भैरवी, सोहनलाल द्विवेदी, प्र. इंडियन प्रेस इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष १९५१ चतुर्थ संस्करण, पृ.सं. ११०

८. मधुर तकाजा, भैरवी, सोहनलाल द्विवेदी, प्र. इंडियन प्रेस इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष १९५१ चतुर्थ संस्करण, पृ.सं. ८५

९. तू अपनी धुन के पीछे चल, बिगुल, सोहनलाल द्विवेदी, प्र. साहित्य भवन, इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष १९५८ तृतीय संस्करण, पृ.सं. ३९

१०. हिमालय, बाँसुरी, सोहनलाल द्विवेदी, प्र. इंडियन प्रेस इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष १९५७, पृ.सं १३

११. मुक्तिगंधा, सोहनलाल द्विवेदी ग्रंथावली, प्र. ग्रंथायन, सर्वोदय नगर सासनी गेट, अलीगढ़, प्रकाशन वर्ष १९८६, पृ.सं. ४१०,४११

१२. मुक्तिगंधा, सोहनलाल द्विवेदी ग्रंथावली, प्र. ग्रंथायन, सर्वोदय नगर सासनी गेट, अलीगढ़, प्रकाशन वर्ष १९८६, पृ.सं ४३३

१३. मुक्तिगंधा, सोहनलाल द्विवेदी ग्रंथावली, प्र. ग्रंथायन, सर्वोदय नगर सासनी गेट, अलीगढ़, प्रकाशन वर्ष १९८६, पृ.सं ४२५

१४. मुक्तिगंधा, सोहनलाल द्विवेदी ग्रंथावली, प्र. ग्रंथायन, सर्वोदय नगर सासनी गेट, अलीगढ़, प्रकाशन वर्ष १९८६, पृ.सं ४३२
१५. कुणाल, एक कवि : एक देश, सं. बनारसीदास चतुर्वेदी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्र. पंडित सोहनलाल द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ समिति, प्रकाशन वर्ष १९६९, पृ.सं २६५
१६. भैरवी, सोहनलाल द्विवेदी, प्र. इंडियन प्रेस इलाहाबाद, प्र. वर्ष १९५१ चतुर्थ संस्करण, पृ.सं ५

शोध छात्र, हिंदी विभाग
कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय, कलबुरगी - ५८५३६७
संपर्क सूत्र. ७३९८१६६३५३

⊙

नरेन्द्र कोहली के आरम्भिक पक्ष के अनुभवों को उभारती आत्मस्वीकृति आत्मकथा

–प्रीति शर्मा

हिन्दी साहित्य की गद्य विधाओं में आत्मकथा एक महत्वपूर्ण विधा है; जिसमें लेखक अपने जीवनानुभवों, संघर्षों और अनुभूतियों को इमानदारी से प्रस्तुत करता है। किसी व्यक्ति को जानने का एकमात्र अच्छा माध्यम 'आत्मकथा' है, जिसमें वह अपने जीवन के सकारात्मक एवं नकारात्मक सब पहलुओं को समान रूप से प्रस्तुत करता है।

''आत्मकथा विधा गद्येत्तर साहित्य के अन्तर्गत आती हैं। गद्येत्तर साहित्य में रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी, आत्मकथा आदि विधाएं आती है।''[१]

आत्मकथा में आत्मकथाकार स्वयं की जीवनी लिखता हैं और इसमें वह स्वयं के जीवन संबंधी अनुभवों, घटनाओं और अपने जीवन से संबंधित विचारों, बातों का एवं मनोभावों को व्यक्त करता है। लेखक आत्मकथा में सकारात्मक-नकारात्मक विचारों को ईमानदारी से व्यक्त करता है, क्योंकि यह कार्य अधिक कठिन होता है। आत्मकथा एक ऐसी विधा है, जो सच्चाई के आधार पर लिखी जाती है। इसमें लेखक का आत्मप्रशंसा मात्र करना ही एकमात्र कार्य नहीं होता, यद्यपि स्वयं त्रुटियों को भी निःसंकोच होकर पाठको के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता हैं।

''हिन्दी साहित्य कोश में भी आत्मकथा को परिभाषित किया गया है, ''आत्मकथा-लेखक के अपने जीवन से संबंधित वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहवालोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्व दिखलाया जाना संभव हैं।''[२]

यहाँ आत्मकथा को जीवन के गहन अध्ययन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

नरेन्द्र कोहली वर्तमान समय के चर्चित कथाकार, नाटककार, निबंधकार, व्यंग्यकार और साहित्य के गम्भीर अध्येता हैं। वह भारतीय अस्मिता और संस्कृति से गहरा संबंध एवं लगाव रखने वाले आधुनिक लेखक है। साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके द्वारा रचित साहित्य में प्रतिबिंबित होता है। इसलिए साहित्यकार के साहित्य तक पहुँचने के लिए उसके जीवन की पूर्व जानकारी हासिल करने की आवश्यकता होती हैं।

'आत्मस्वीकृति' आत्मकथा की चर्चा करने के पूर्व आत्मकथा के स्वरूप एवं अर्थ समझना आवश्यक है। आत्मकथा लेखक के निजी जीवन का ब्यौरा होती है जिसमें लेखक स्वयं जीवन की घटनाओं का क्रमिक वर्णन अपनी आत्मकथा में करता है।

'आत्मस्वीकृति' आत्मकथा मे नरेन्द्र कोहली ने अपनी जीवन रूपी अनुभूतियों एवं अनुभवों को अभिव्यक्त किया हैं। वह आजीवन सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति करने वाले यथार्थवादी परंपरा के कथाकार रहे है। कोहली जी ने व्यक्तिगत जीवन में जो अनुभव किया जो देखा, सुना, जिया उसे अपनी कलम के माध्यम से लेखन का अंग बनाया।

नरेन्द्र कोहली का जन्म ६ जनवरी १९४० ई. को स्यालकोट में हुआ, यह स्थान वर्तमान समय में पाकिस्तान में स्थित हैं। उनके दादा पंजाब के वन-विभाग के हेडक्लर्क थे। दादा का नाम हरकिशनदास और दादी का नाम भाइयादेई था। छोटी दादी उनकी सौतेली दादी का नाम दुगदेवी था। इनके पिता परमानन्द कोहली के कुछ निजी मुश्किलों के कारण से वह सातवी-आठवीं से आगे नहीं पढ़ सके। उनके दादा ने उनके पिता को स्यालकोट में पुस्तकों और पत्रिकाओं की एक दुकान खोल दी थी। किन्तु वे दुकानदार नही, साहित्यकार बनना चाहते थे। उन्होंने दो-एक कहानियाँ भी लिखी थी, जो उस समय के चर्चित समाचार पत्र में प्रकाशित हुई थी। किन्तु वह साहित्यकार नहीं बन सके और न ही दुकानदार।

इस आत्मकथा में नरेन्द्र कोहली के बाल्यकाल से प्रौढ़ावस्था की यात्रा का वर्णन है जिसमें उनके बचपन का वर्णन, कुछ ऐसी स्मृतिया जिनके प्रभाव ने लेखक के जीवन निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

कोहली जी का शैशवकाल नटखट और शरारती बच्चों के जैसा नहीं रहा था। आरम्भ से वे काफी बीमार रहा करते थे वह सदैव अपनी मां से चिपके रहते थे। जिसका वर्णन उनकी आत्मकथा आत्मस्वीकृति में मिलता है :

''मेरा शैशव कभी भी नटखट और खिलंडरे बच्चों का-सा नहीं रहा। आरम्भ में मैं काफी बीमार और रोना बच्चा रहा होऊँगा। शरीर पर फोड़े-फुंसियाँ भी बहुत थी। अधिकांशतः माँ से ही चिपका रहता था। शक्ति की कमी रही होगी, पर उर्जा की कमी नहीं थी, क्योंकि.. .....उसे मैंने बिखरने नहीं दिया।''[३]

नरेन्द्र कोहली सदैव अधिक श्रम करने वाले व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। कोहली के बड़े भाई सोमदेव को उनकी सौतेली दादी ने गोद लिया था। लेखक उन्हें चाचा जी कह कर पुकारते थे। स्वयं वह अपने दोनो भाइयों भूषण और रवीन्द्र तथा माता-पिता के साथ लाहौर

में रहते थे।

नरेन्द्र कोहली ने स्वयं जीवन को जिस रूप से अनुभूत किया, उसका अपने साहित्य में अंग बनाया। वह बचपन से ही पढ़ने में रूचि रखने वाले बालक थे। बचपन से ही इन्होंने कई पुरस्कार प्राप्त कर लिए थे। आज के समय वे सुपरिचित लेखक के रूप में चर्चित हैं। इनकी मृत्यु ७ अप्रैल २०२१ को दिल्ली में हुई।

नरेन्द्र कोहली एक महान व्यंग्यकार की दृष्टि से समाज के सम्मुख आते है। वह अपनी आत्मकथा के प्रारंम्भ में ही यह व्यंग्य करते हुए कहते है कि ''यदि मेरे किसी शोधार्थी ने मेरी रचनाओं मे से मेरे जीवन को खोज निकाला होता तो शायद मुझे आत्मस्वीकृति लिखने की आवश्यकता न पड़ती।''[४]

'आत्मस्वीकृति' आत्मकथा में वह अपनी नज़र में स्वयं को देखते है कि उनका जीवनानुभाव बहुत ही अलग-अलग ढंग से गुज़रा है पढ़ाई के साथ-साथ लिखने के शौकीन नरेन्द्र कोहली ने अपनी पहली कविता छठी कक्षा में लिखी। उर्दू में जो कक्षा की हस्तलिखित पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। उर्दू कविता के साथ-साथ उन्होंने सातवीं में एक कहानी लिखी जो प्रकाशित न हुई जिससे उन्हें निराशा हुई। पुस्तकें खरीदने का शौक था ही साथ ही पढ़ने का, लिखने का और वह कहते है कि बचपन में कई बार घर से पैसे मिलते तो वह पैसे जोड़-जोड़ कर किताबे खरीद लाते थे।

जिससे उनकी मां नाराज़ होती थी कि खाने पीने के बजाय फालतू रद्दी खरीद लाता है वह कहते है कि ''किसी बच्चे को पैसे दो तो कुछ खाता पीता है, और यह है कि खरीद-खरीद कर रद्दी-कागज़ जमा किया करता है।''[५]

उन्ही दिनों में वह अपने दोस्तो के साथ मिलकर एक पुस्तकालय भी खोलते है जिसमें लड़के गली-मुहल्ले के साथ-साथ और कुछ स्कूल के बच्चे भी उस पुस्तकालय के सदस्य भी बने थे। जमशेदपुर में उनके पिताजी ने एक फलों का काम करना प्रारंम्भ किया था जिसमें पहले वह बाज़ार में पटरी पर बैठा करते थे, फिर एक दुकान ले ली थी। वह कहते है, चौथी से मैट्रिक पास करने तक वह स्वयं अपने भाइयों और पिताजी के साथ पटरी वाली दुकान में बैठा करते थे।

नरेन्द्र कोहली आठवीं कक्षा में पढ़ते थे तब वह अपनी स्मृति से बताते है उन्होंने एक दृश्य ऐसा देखा जिसने उनकी जिन्दगी में परिवर्तन किया। वह बताते हैं- ''आठवीं में पढ़ता था, तो पटरी पर की दुकान पर बैठे हुए एक ऐसा दृश्य था कि मंडी से आई आमों की टोकरी

को उनके पिता जी ने खोला तो कुछ सड़े गले आमों को सड़क पर फैंक देते ताकि आते-जाते पशु उसे खा ले। पर एक गाय उन सड़े आमों को सूंघकर छोड़ गई थी, एक बकरी उन्हें चाटकर आगे बढ़ गई..... पर तभी एक छोटा-सा काला कलूटा नंगा बच्चा वहां आया। उसकी छाती के पंजर नज़र आ रहे थे और पेट बेतहाशा फूला हुआ था। उस बच्चे ने उनके सामने बैठ कर सड़े आमों को बड़े स्वाद से खाया था।''[६] यह दृश्य देखकर कोहली ने इस किस्से को अपनी एक कहानी में लिख डाला जिसका नाम 'हिन्दुस्तां जन्नतनिशे' है।

वह उस समय की स्कूल चर्चित पत्रिका में प्रकाशित भी हुई थी। वह अपनी स्मृतियों एवं अनुभवों के माध्यम से उस समय की वातावरण एवं स्वयं को दर्शाते हैं। उन दिनो ''वह अपना लेखकीय नाम 'नरिन्दर कुमार कोहली स्यालकोटी' मानते थे, वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेने लगे थे। कक्षा में प्रथम आया करते थे, स्कूल में प्रथम स्थान हासिल करना। एजुकेशन वीक मनाई जाती थी जिसमें टिस्को के सारे स्कूलों में प्रथम आए-आठवीं, नौवीं, दसवीं, ग्यारहवी-पूरे चार वर्ष। स्कूल की ओर से 'किशोर दल' द्वारा आयोजित वाद-विवाद प्रतियोगिता में हिस्सेदारी के लिए पुरूलिया गए। वहाँ उर्दू में सर्वश्रेष्ठ वक्ता घोषित भी हुए।

अगले वर्ष छपरा गये और बिहार के स्कूली बच्चों में उर्दू में सर्वश्रेष्ठ, लड़कों में सर्वश्रेष्ठ तथा सब वक्ताओं में उन्हें सर्वश्रेष्ठ वक्ता घोषित किया गया। वापस जमशेदपुर लौटने पर के. एम.पी.एम. हाईस्कूल के सारे लड़कों को मैदान में जमा कर उनकी सफलता की घोषणा करते हुए असिस्टेंट हैडमास्टर श्री.बी.पी. श्रीवास्तव ने घोषणा की कि नरेन्द्र कोहली ने सारे पुरस्कार जीते है.....तीन बड़ी-बड़ी ट्राफियां.....बस एक ही नहीं जीत पाए-'लड़कियों में सर्वश्रेष्ठ वक्ता' वाला पुरस्कार।''[७] इन सब उपलब्धियों के कारणों से वह अपनी ही नज़रों में हीरो हो गए। किसी अन्य की उन्हें कोई चिंता नहीं थी।

नरेन्द्र कोहली अपने जीवनानुभवों में अपनी साहित्यिक रूचि होने का श्रेय अपनी बहन को देते है। उस समय उनकी बहन कॉलेज में पढ़ रही थी और उन्होंने 'हिन्दी साहित्य' वैकल्पिक विषय को चयनित किया था। जिसका प्रभाव कोहली पर पड़ा। उस समय वे 'पंत' और 'प्रसाद' के काव्य-संग्रह पढ़ती थी। 'रामचरितमानस' पढ़ा करती थी, 'रत्नाकर' और 'सूरदास' के कई प्रसंगों को वह उन्हें पढ़ाया करती थी। जिसके परिणामस्वरूप नरेन्द्र कोहली में हिन्दी साहित्य को और गहराई से पढ़ने की रूचि पैदा हुई।

उन्होंने अपने 'हिन्दी साहित्य' विषय चयन से परिवार की कुछ परिस्थितियों का वर्णन भी किया है कि जिसमें उनके भाई, पिताजी नहीं चाहते थे वह साहित्य पढ़े। वह चाहते थे कि वह विज्ञान पढ़े। जिसका उदाहरण वह बताते हुए कहते है- ''मैट्रिक में छहत्तर प्रतिशत

अंक लेकर वह पास हुए और अनोखी जिद्द कर बैठे कि न वह विज्ञान पढेगा.....न इंजीनियर बनेगा, न डॉक्टर, न वैज्ञानिक.....तब तो बी.ए. करेगा और बी.ए. में गणित न लेकर हिंदी साहित्य पढ़ेगा और अंतः हिंदी में एम.ए. करके हिंदी का अध्यापक बनेगा और खूब लिखेगा।''[८] और ऐसा हुआ भी।

कोहली जी अपने पढ़ने-लिखने के साथ-साथ अनेक गतिविधियों में हिस्सेदारी लेते थे। जिसमें वह प्रथम श्रेणी में आकर गर्व महसूस करते थे।

वह अपनी आलोचनात्मक दृष्टि से स्वयं को देखते हुए कहते है- ''दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापकों के चेहरे की अफसरी उसे खली, सहपाठी-लेखकों की अपेक्षा चुभी, आलोचक वर्ग की उदासीनता ने उसे कोंचा.....पर पढ़ाई के साथ-साथ कहानियां लिखने से वह बाज नहीं आया। कहानियां लिखे बिना कैसे रहा जा सकता था। एम.ए. हुआ। नौकरी लगी। विवाह हुआ। गृहस्थी के ताने-बाने में उलझा। हारी-बिमारी देखी। थीसिस लिखा। पी.एच.डी हुआ, पर लिखना नहीं छूटा। धीरे-धीरे सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो गया..... लिखना.....लिखना और छपना.....''[९]

नरेन्द्र कोहली के जीवन को लेकर विभिन्न लेखको ने अपने मत प्रस्तुत किए है, जिसमें से रमेश बतरा का मानना है कि नरेन्द्र कोहली : 'लेखक बने ही नहीं बनाए भी' शीर्षक में वह मानते है कि वह स्वयं लेखक बने भी नही और न बनाए गए। पढ़ने-लिखने के साथ-साथ कोहली जी ने अपने विद्यार्थियों को अध्ययन के साथ लिखने के लिए भी प्रोत्साहित किया। इस कार्य के लिए वह प्रत्येक रविवार को अपने ही घर पर एक गोष्ठी का मंचन किया करते थे। इन गोष्ठियों के परिणाम से अनेक लेखकों का निर्माण भी हुआ। कोहली के निर्देशन में प्रेम जनमेजय, सुभाष अखिल, और हरीश नवल जैसे लेखकों ने अधिक नाम कमाया और अपने जीवन में तरक्की भी की।

रमेश बतरा का मानना है ''हरि अनंत हरि कथा अनंता' के सुर में श्री मान नरेन्द्र कोहली को उनकी लेखकीय क्षमताओं के संदर्भ में 'अंनत' कहा जाता है। वर्षों पूर्व वह जमशेदपुर की पृष्ठभूमि पीठ पर लादे हुए दिल्ली आए और दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हो गए। आज वह अपनी धर्म पत्नी प्राध्यापिका मधु जी और दो बच्चों के साथ चैन की जिंदगी बसा रहे है।''[१०] उनका मानना यह भी है कि वह एक प्रसिद्ध कहानीकार, व्यंग्यकार के रूप में चर्चित रहे। वह 'रामकथा' के 'रामायणकार' के रूप में सर्वाधिक प्रचारित और प्रसारित हो गए। उनके साहित्य में अनेक रूप से अप्रतिम कथा-संग्रह, व्यंग्य-संग्रह और उपन्यासों में वह प्रतिष्ठित रहे है। नरेन्द्र कोहली स्वयं कहते है-''जीवन में अच्छी-अच्छी बाते ही याद रहे,

यही एक लेखक की सफलता है। इससे मेरा लेखन भी सार्थक होता है।''[११] साथ ही कोहली ने रामकथा का जो वर्णन किया उसमें उन्होंने एक ऐसा नया आयाम प्रदान किया जिसमें ऐसा प्रतीत होता है कि रामकथा उस समय की नहीं बल्कि वर्तमान समय की कथा हो।

इस तरह से हरि जोशी का मानना है। नरेन्द्र कोहली एक अप्रतिम साहित्य-साधक के रूप से प्रसिद्ध हुए। वह कहते है-''कोहली जी से मेरा व्यक्तिगत परिचय १९८० के लगभग हुआ था, तब से आज तक मैंने उन्हें निर्विवाद, दृढ़ निश्चयी, निष्कंप निर्बाध, अपने लक्ष्य की ओर चलते हुए ही पाया, यही सिद्धांत मेरे लिए प्रेरेणा की 'वस्तु' बना हुआ है। इस वस्तु का थोड़ा अंश.....उनसे प्रत्येक मुलाकात में ५-१० प्रतिशत चुरा लाता हूँ, उन्हें मालूम भी नहीं पड़ता।''[१२] उनका मानना है कि कोहली जैसे महान् साहित्यकार जो तत्कालीन पौराणिक संदर्भों की वर्तमान के परिवेशगत परिस्थितियों से जोड़कर उन्हें प्रासंगिक बनाने में अपनी महान् भूमिका निभाते है। वह कोहली के जीवन रूपी वर्णन उपरांत यहाँ तक मानते है कि कोहली ने तपस्या और सिर्फ तपस्या ही की है, जिसके कारण वह मेरे आदर के पात्र सिद्ध होते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आत्मकथा एक ऐसी विधा है, जो व्यक्ति के नेपथ्य में छिपे पक्षों को पाठक के सामने रखती है। किसी भी आत्मकथा को पढ़ने के बाद अनुभव होता है कि वास्तव में साहित्यकार किन उतार-चढ़ावों से अपने जीवन में गुजरा है। किसी भी रचनाकार के व्यक्तित्व को समझने एवं जानने के लिए उसके द्वारा रचित समग्र साहित्य के साथ-साथ आत्मकथा का पठन-पाठन भी महत्वपूर्ण है क्योंकि उसकी आत्मकथा एवं साहित्य में उस रचनाकार का जीवनानुभवों का वर्णन, विचारधारा, परिवेश, उतार-चढ़ावों आदि रूपों का वर्णन निहित रहता है। इसलिए किसी लेखक के कृत्तित्व की जानकारी के लिए उसके साहित्य को पढ़कर जानकारी प्राप्त की जा सकती है जबकि लेखक के व्यक्तित्व को भी कृतित्व के साथ-साथ और गहराई से समझने के लिए उनके सम्पर्क में आए लोगों एवं व्यक्तित्व निर्माण में सहायक लोगों का वर्णन आवश्यक रहता है। जिसके साथ लेखक ने यहाँ समय बिताया, मित्रों, संबंधियों, परिजनों आदि द्वारा ही उनकी जीवन संबंधी जानकारी प्राप्त होती हैं। अतः नरेन्द्र कोहली एक महान् कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार तथा व्यंग्यकार है। 'आत्मस्वीकृति' आत्मकथा कोहली के सम्पूर्ण जीवन यात्रा न होकर जीवन के आरंम्भिक पक्षों के अनुभवों को उभारती हुई आत्मकथा सिद्ध होती है, जिसमें उनका बाल्यकाल बचपन की कुछ स्मृतियां, लेखन कार्य की यात्रा एवं कुछ जीवन संबंधी पहलुओं को ही उजागर किया है। ये सब होते हुए भी वे अपने समकालीन साहित्यिकारों से भिन्न स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं। साहित्य के योगदान में वह अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इसलिए हिन्दी साहित्य जगत्

में वह आज अपना स्वतंत्र एवं सर्वोच्च स्थान रखते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. कैलाशचन्द्र भाटिया, साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएं, (नई दिल्ली : तक्षशिला प्रकाशन, १९९६), पृ० ४५
२. हिन्दी साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा, (संपा.), (वाराणसी : ज्ञानमण्डल : दूसरा संस्करण, १९६३), पृ० ६८
३. आत्मस्वीकृति, नरेन्द्र कोहली, हिन्द पॉकेट बुक्स, २०१४, पृ० ७
४. वही से, फ्लैप से
५. 'एक व्यक्ति नरेन्द्र कोहली', कार्त्तिकेय कोहली, क्रिएटिव बुक कंपनी, पृ० १४०
६. वही, पृ० १४०
७. वही, पृ० १४२
८. वही, पृ० १४३
९. वही, पृ० १४४
१०. वही, पृ० ५९
११. वही, पृ० ६२
१२. वही, पृ० ६५

शोध-छात्रा, हिन्दी-विभाग
शोध निर्देशिका-डॉ० सपना शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी-विभाग
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर